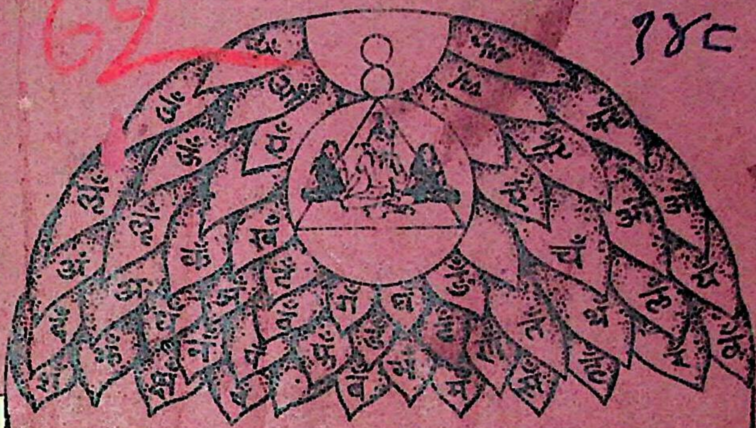
कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।





संत कबीर

(संक्षिप्त)

रामकुमार वर्मा

साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद।


श्री मुमुक्षु भवन पुस्तकालय
मुमुक्षु भवन, अस्सी, काशी

संत कबीर

(संक्षिप्त)

[इलाहाबाद यूनीवर्सिटी के बी० ए० के पाठ्यक्रम
में निर्धारित]

रामकुमार वर्मा

साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद ।

१९४६

प्रकाशक :—
साहित्य-भवन लिमिटेड,
इलाहाबाद ।

मूल्य २)

मुद्रक :—
श्री जगतनारायणलाल,
हिन्दी-साहित्य प्रेस, प्रयाग

प्रकाशकीय

'संत कबीर' एक प्रामाणिक ग्रंथ है, जैसा कि विद्वानों को विदित ही है। हिंदी साहित्य में ऐसे ग्रंथ कम हैं जिनमें कवि तथा उसके काव्य से संबंधित विषयों का समुचित निरूपण हो। 'संत कबीर' एक ऐसा ही ग्रंथ है। परंतु उसका आकार बड़ा हो जाने के कारण मूल्य भी अधिक हो गया, और विद्यार्थी एवं जन-साधारण उसका उपयोग पूर्ण रूप से न कर सके। उन्हीं लोगों के लिए यह संक्षिप्त संस्करण प्रस्तुत किया जाता है। आशा है, विद्यार्थियों की माँग इस संस्करण से पूर्ण हो सकेगी।

प्रकाशक

विषय सूची

रागों का निर्देश

प्रस्तावना

कबीर की कविता एक युगांतरकारी रचना है। भक्त कवियों की विनयशीलता और आत्म-भर्त्सना के बीच में वह स्पष्ट कंठ में कही गई धार्मिक और सामाजिक जीवन की पक्षपात-

कबीर की कविता

रहित विवेचना है। उस कविता में समय की अंध-परंपराओं को छिन्नमूल करने की शक्ति है और जीवन में जागृति लाने की अपूर्व क्षमता। हिंदी साहित्य के धार्मिक काल के नेता के रूप में कबीर ने जितने साहस से परंपरागत हिंदू धर्म के कर्मकांड से संघर्ष लिया उतने ही साहस से उन्होंने भारत में जड़ पकड़ने वाली इस्लाम की नवीन सांप्रदायिक भावना से लोहा लिया। कबीर ने सफलतापूर्वक दोनों धर्मों की 'अधार्मिकता' पर कुठाराघात किया और एक नये संप्रदाय का सूत्रपात किया जो 'संतमत' के नाम से प्रख्यात हुआ। इस संप्रदाय ने शास्त्रीय जटिलताओं से सुलझा कर धर्म को सरल और जीवनमय बना दिया जिससे साधारण जनता भी उससे अंतः प्रेरणाएँ ले सके। यही कारण है कि इस संतमत में समाज के साधारण और निम्न व्यक्ति भी सम्मिलित हो सके जिनकी पहुँच शास्त्रीय ज्ञान तक नहीं थी। कबीर ने साधारण जीवन के रूपकों द्वारा अथवा अनुभूतिपूर्ण सरस चित्रों के सहारे ही आत्मा, परमात्मा और संसार की समस्याओं को सुलझाया। धर्म-प्रचार की इस शैली ने धर्म को व्यक्तिगत अनुभव का एक अंग बना दिया और समाज ने धर्म के वास्तविक रूप को पहिचान लिया।

जनता का यह गतिशील सहयोग कबीर की रचनाओं के पक्ष में अनुकूल सिद्ध नहीं हुआ। कबीर संत पहले थे, कवि बाद में। उन्होंने

कविता का रूप

कविता का चमत्कार प्रदर्शित करने के लिए कंठ मुखरित नहीं किया, उन्होंने धर्म के व्यापक रूप को सुबोध बनाने के लिए काव्य नियोजित किया। अतः कबीर में धार्मिक दृष्टिकोण प्रधान है काव्यगत दृष्टिकोण गौण। यह दूसरी बात है कि जीवन में 'गहरी पैठ' होने के कारण उनकी कविता में जीवन क्रांति सहस्रमुखी हो उठी। उससे धर्म प्राणमय होकर अनेक चित्रों में साकार हो गया। संत कबीर कवि कबीर हो गए यद्यपि संत ने न तो भाषा के रूप को सँवारा और न पिंगल की मात्रिक और वर्णिक शैली का अनावश्यक अनुकरण किया। गेय पदों के रूप में उन्होंने कविता कही और जनता ने उसमें अपना कंठ मिला दिया। जनवाणी के रूप में ये पद समाज में संचरित हो गए। साथ ही साथ कबीर के नाम से जनता ने नवीन पदों की रचना करने में कबीर के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति समझी। इस प्रकार कबीर की वाणी में ऐसे-ऐसे पद प्रक्षिप्त किए गए जिनमें न तो कबीर की आत्मा है और न उसका ओज। कबीर ने 'पुस्तक-ज्ञान' का तिरस्कार किया था अतः स्वयं उन्होंने किसी विशिष्ट ग्रंथ की रचना नहीं की। वे तो जनता में उपदेश देते थे और अपने पदों को उपदेश का माध्यम बनाते थे। फलतः पदों में न तो कोई क्रमबद्धता है और न कोई शृंखला। कविता का रूप मुक्तक होने के कारण संत संप्रदाय के भक्तों द्वारा मनमाना बढ़ाया-घटाया गया है। अतः कबीर के नाम से प्रसिद्ध रचना में कबीर की वास्तविक रचना पाना बहुत कठिन हो गया है। कबीर के नाम से पाई जाने वाली रचना अधिकांशतः कबीर के प्रथम शिष्य धर्मदास द्वारा ही लिखी गई है। बाद में तो कबीर-पंथी साधुओं ने अपनी ओर से बहुत-सी रचना की और संत कबीर में अपनी प्रगाढ़ श्रद्धा होने के कारण उसे कबीर के नाम से ही प्रचारित किया। कबीर के प्रति इस श्रद्धा और भक्ति ने कबीर की कविता का वास्तविक रूप ही हमसे

छीन लिया और आज कबीर के नाम से प्रचलित रचना को हम संदिग्ध दृष्टि से देखने लगे हैं।

कविता के संग्रह

इस समय कबीर की कविता के बहुत से संग्रह प्रकाशित है। प्रायः सभी में पाठ-भेद है। इस दृष्टि-कोण से निम्नलिखित संस्करण अधिक प्रसिद्ध कहे जा सकते हैं :—

१. संतबानी संग्रह (बेलवेडियर प्रेस) प्रकाशित सन् १९०५, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।

२. बीजकमूल (कबीरचौरा, बनारस) प्रकाशित सन् १९३१, महावीर प्रसाद, नैशनल प्रेस, बनारस कैंट।

३. सत्य कबीर की साखी (श्री युगलानंद कबीरपंथी भारतपथिक) प्रकाशित सन् १९२०, श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई।

४. सद्गुरु कबीर साहब का साखी ग्रंथ (कबीर धर्मवर्धक कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा) प्रकाशित सन् १९३५, महंत श्री बालकदासजी; धर्मवर्धक कार्यालय, सीयाबाग, बड़ौदा।

५. बीजक श्री कबीर साहब (साधु पूरनदास जी) प्रकाशित सन् १९०५, बाबू मुरलीधर, काली स्थान, करनेलगंज, इलाहाबाद।

६. कबीर ग्रंथावली (नागरी प्रचारिणी सभा, काशी) प्रकाशित सन् १९२८, इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग।

उपर्युक्त संस्करणों में बीजक और साखी ग्रंथ अलग-अलग अथवा मिले हुए ग्रंथ हैं जिनसे कबीर की कविता का ज्ञान जनता में सम्यक् रूप

संग्रहों की प्रामाणिकता संतबानी संग्रह

से अवश्य हो गया किंतु इन सभी संस्करणों की प्रामाणिकता चिंत्य है। बेलवेडियर प्रेस से प्रकाशित संतबानी-संग्रह का प्रचार सार्वाधिक है किंतु यह प्रति संतों और महात्माओं द्वारा एकत्रित सामग्री के आधार पर ही संकलित की गई है। उसका रूप साधु-संतों के गाये हुए

पदों और गीतों से ही निर्मित है, किसी प्राचीन हस्तलिखित प्रति का आधार उसके संकलन में नहीं लिया गया और यदि लिया भी गया है तो उसका कोई संकेत नहीं दिया गया।

कबीरचौरा ने जो बीजक मूल की प्रति प्रकाशित की है, उसका पाठ अनेक प्रतियों के आधार पर अवश्य है किंतु वे प्रतियाँ केवल 'साक्षी रूप' से ही उपयोग में लाई गई हैं।[1] इस

बीजक मूल

प्रति का मूल आधार कबीरचौरा का प्राचीन प्रचलित पाठ है। किंतु यह प्राचीन पाठ किस प्रति के आधार पर है, इसका कोई उल्लेख नहीं किया गया।

श्री युगलानंद कबीरपंथी भारतपथिक की प्रति प्रामाणिक प्रतियों की सहायता से भी प्रामाणिक नहीं हो सकी। श्री युगलानंद ने अपनी प्रति को अनेक प्रतियों से शुद्ध भी किया है। "जिन पुस्तकों से यह शुद्ध हुई है उनमें से एक प्रति तो रसीदपुर शिवपुर निवासी श्रीमान् बख़्शी गोपाललाल जी पूर्व अमात्य शिवहर राज्य के पुस्तकालय से प्राप्त हुई थी जो संवत् १६०० की लिखी हुई है। दूसरी प्रति नागपुर

सत्य कबीर की साखी

इन्द्रभान जी निवासी श्री भैरवदीन तिवारी जी ने कृपाकर भेजी थी जिसमें अनेक संतों की वाणी के साथ-साथ यह साखी भी है और संवत् १८४२ की लिखी है और तीसरी प्रति मखदूमपुर जिला गया निवासी

---

[1]बीजक मूल के संपादक साधु लखनदास और साधु रामफलदास लिखते हैं :—

अपने मत तथा इस ग्रंथ का संशोधन ग्यारह ग्रंथों से किया है जिसमें छः टीका-टिप्पणी साथ हैं और पाँच हाथ की लिखी पोथी है परंतु इन सब ग्रंथों को साक्षी रूप में रखा था, केवल स्थान कबीरचौरा काशी के पुराने और प्रचलित पाठ पर विशेष ध्यान दिया गया है।

श्री नेतालालराम जी की भेजी हुई है, जिसमें यद्यपि सन् संवत् नहीं लिखा है परंतु पुस्तक के देखने से जान पड़ता है कि यह भी प्राचीन ही लिखी हुई है। इसके अतिरिक्त स्वामी श्री युगलानंद जी के पास और भी अनेक प्रतियाँ थीं जिससे उन्होंने इस पुस्तक को शुद्ध कर लिया है।" (श्री खेमराज श्रीकृष्णदास) यदि श्री युगलानंद जी अपनी प्रति में संवत् १६०० की प्रतिवाली सामग्री रखते तो उनकी प्रति अवश्य प्रामाणिक होती किंतु उन्होंने किया यह है कि 'कबीर साहब की जितनी साखियाँ जगत में प्रसिद्ध हैं सब इसी पुस्तक में' संकलित कर ली हैं और उन्हें संवत् १६०० की प्रति की साखियों से यथास्थान शुद्ध किया है। इससे इस पुस्तक की बहुत-सी सामग्री संवत् १६०० की प्रति से अतिरिक्त है और उसकी प्रामाणिकता के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनकी प्रति में प्रामाणिक और अप्रामाणिक सामग्री एक साथ मिल गई है।

साखी ग्रंथ

कबीर धर्मवर्धक कार्यालय सीयाबाग बड़ौदा का साखी ग्रंथ एक आलोचनात्मक अवतरणिका और अनुक्रमणिका के साथ है और उसमें कबीर की सभी साखियाँ संग्रहीत हैं किंतु पुस्तक में किसी भी स्थान पर नहीं लिखा है कि साखियों के पाठ का आधार क्या है। अतः इस पाठ की प्रामाणिकता के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

बीजक

साधु पूरनदास जी का बीजक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध कहा जाता है। संवत् १८९४ में उन्होंने उसकी 'त्रिज्या' लिखी। यह त्रिज्या "पहली बार बाबा देवीप्रसाद और सेवादास और मिस्त्री बालगोविंद की सहायता से मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा लखनऊ के छापेखाने में छापी गई थी। उसके बहुत अशुद्ध हो जाने के कारण हर जगह के साधु लोग बहुत शिकायत

किया करते थे।......सब साधु-महात्माओं की दया से एक प्रति हस्तलिखित बीजक त्रिज्या सहित बुरहानपुर की लिखी हुई, साधु काशीदास जी साहब से हमको मिली। उस ग्रंथ की शुद्धता को देखकर हमारा मन बहुत प्रसन्न हुआ, और साधु काशीदासजी साहब ने इस त्रिज्या के शोधने में पूर्ण परिश्रम उठाकर सहायता दी है।" (बाबू मुरलीधर) यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि साधु काशीदास जी साहब की जो प्रति थी वह किस संवत् की थी और उसका आधार क्या था ? यों बीजक को कबीर के विचारों का पुराना संग्रह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

प्रामाणिकता के दृष्टिकोण को सामने रखते हुये काशी नागरी प्रचारिणी सभा से रायबहादुर श्री (अब डाक्टर) श्यामसुन्दरदास जी ने कबीर ग्रंथावली का प्रकाशन किया। यह संस्करण

कबीर ग्रंथावली

दो प्राचीन प्रतियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। एक प्रति संवत् १५६१ की लिखी हुई है और दूसरी संवत् १८८१ की। "दोनों प्रतियाँ सुन्दर अक्षरों में लिखी हैं और पूर्णतया सुरक्षित हैं। इन दोनों प्रतियों के देखने पर यह प्रकट हुआ कि इस समय कबीरदास जी के नाम से जितने ग्रंथ प्रसिद्ध हैं उनका कदाचित् दशमांश भी इन दोनों प्रतियों में नहीं है। यद्यपि इन दोनों प्रतियों के लिपिकाल में ३२० वर्ष का अंतर है पर फिर भी दोनों में पाठ-भेद बहुत ही कम है। संवत् १८८१ की प्रति में संवत् १५६१ वाली प्रति की अपेक्षा केवल १३१ दोहे और ५ पद अधिक हैं।" नागरी प्रचारिणी सभा के इस संस्करण का मूल आधार संवत् १५६१ की लिखी हस्तलिखित प्रति है जिसके प्रथम और अंतिम पृष्ठों के चित्र इस संस्करण के साथ प्रकाशित हैं। यदि इस प्रति को बारीकी से देखा जाय तो इसकी प्रामाणिकता के संबंध में संदेह बना ही रहता है। संदेह का पहला कारण तो यह है कि इस हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका ग्रंथ

में लिखे गए अक्षरों से भिन्न और मोटे अक्षरों में लिखी गई है। समस्त ग्रंथ और पुष्पिका लिखने में एक ही हाथ नहीं मालूम होता। प्रति का अंतिम अंश यह है:—

इतिश्रीकबीरजीकीबांणींसंपूरणसमाप्तः॥ साषी ॥८१०॥ अंग ॥३६॥ पद ४०२ ॥ राग १५॥

पुष्पिका यह है:—संपूर्णसंवत् १५६१ लिप्पकृतावाणारसमध्यपेमचंद पठनाथ् मलुकदासबाचथिंचाजांसूश्री रामरामछ्याद्रसि पूस्तकंद्रष्ट्वाता इसंलितंमया यदिशुद्धंतोवाममदोशोनदियतां ॥

प्रति के अंतिम अंश का 'संपूरण' पुष्पिका में 'संपूर्ण, हो गया है। इस संबंध में श्री हज़ारी प्रसाद द्विवेदी भी लिखते हैं, "एक बार 'इतिश्री कबीर जी की बाणी संपूरण समाप्तः ||......' इत्यादि लिखकर फिर से अपेक्षाकृत मोटी लिखावट से 'संपूर्ण संवत् १५६१' इत्यादि लिखना क्या संदेहास्पद नहीं है? पहली बार का 'संपूरण' और दूसरी बार का 'संपूर्ण' काफ़ी संकेतपूर्ण हैं। एक ही शब्द के ये दो रूप—हिज्जे और आकार-प्रकार में स्पष्ट ही बता रहे हैं कि ये एक हाथ के लिखे नहीं हैं! ऐसा जान पड़ता है कि अंतिम डेढ़ पंक्तियाँ किसी बुद्धिमान की कृति हैं।" इस प्रकार इस प्रति की पुष्पिका का संपूर्ण ग्रंथ के बाद की लिखी हुई जान पड़ती है। पुष्पिका में एक बात और ध्यान देने योग्य है। मूल में 'ल' 'क' 'श्री' जिस आकार-प्रकार में लिखे गए हैं उस आकार-प्रकार में वे पुष्पिका में नहीं लिखे गए। फिर मूल प्रति में 'य' और 'व' के नीचे बिंदु रक्खे गए है जो पुष्पिकां के 'य' और 'व' के नीचे नहीं हैं। 'दोष' के हिज्जे के अंतर ने तो यह स्पष्ट ही निश्चत कर दिया है कि पुष्पिका और मूल एक ही व्यक्ति द्वारा नहीं लिखे गए। मूल के अंतिम पृष्ठ की चौथो पंक्ति में है:—'पीया दूध रुध्र है आया मुई गाइ तब दोष लगाया।' यही 'दोष' पुष्पिका में 'दोशो न दियतां'

में 'दोरा' लिखा गया है। इसी प्रकार मूल में 'इंद्री स्वारथि सब कीया बंध्या भ्रम सरीर' में 'इंद्री' के 'द्र' का जो रूप है वह पुष्पिका में 'याद्रसिं पूस्तकं द्रष्ट्वा' में 'याद्रसि' और द्रष्ट्वा के 'द्र' का रूप नहीं है। इन अनेक कारणों से यह प्रति प्रामाणिक ज्ञात नहीं होती। संदेह का दूसरा कारण यह है कि इस प्रति में पंजाबीपन बहुत है जब कि बनारस में लिखी जाने के कारण इसमें पूर्वीपन ही अधिक होना चाहिये। फिर कबीर की बोली 'पूरबी' ही अधिक होनी चाहिये क्योंकि उन्होंने कहा भी है कि उनका सारा जन्म 'सिवपुरी (काशी) में ही व्यतीत हुआ।' इस पंजाबीपन का कारण स्वयं ग्रंथ के संपादक बाबू श्यामसुन्दर दास की 'समझ में नही आता।' वे लिखते हैं 'या तो यह लिपिकर्त्ता की कृपा का फल है अथवा पंजाबी साधुओं की संगित का प्रभाव है।" यदि यह पंजाबीपन लिपिकर्त्ता की 'कृपा का फल' हैं तो प्रति में कबीर साहब का शुद्ध पाठ ही कहाँ रहा? और यदि यह पंजाबी साधुओं की संगित का प्रभाव है तो क्या बनारस में रहने वाले कबीर साहब पर बनारस की बोली या बनारस के साधुओं का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा? संपादक द्वारा दिए गए ये दोनों कारण केवल मन समझाने के लिए है। इस संस्करण में जो पाठ प्रामाणिक माना गया है उसमें भी अनेक भूलें हैं। हस्तलिखित प्रतियों में एक लकीर में सभी शब्द मिलाकर लिख दिए जाते हैं, एक शब्द दूसरे शब्द से अलग नहीं रहता। अतः पंक्ति को पढ़ने में दृष्टि का अभ्यास होना चाहिये जिससे शब्दों का अलग-अलग क्रम स्पष्ट पढ़ा जा सके। हस्तलिखित प्रति को छापते समय संपादक को संदर्भ और अर्थ समझ कर शब्दों का स्पष्ट रूप लिखना चाहिए। कबीर ग्रंथावली में अनेक स्थलों पर शब्दों को अलग अलग लिखने में भूल हो गई है। कहीं एक शब्द दूसरे से जोड़ दिया गया है, कहीं किसी शब्द को तोड़ कर आगे और पीछे के शब्दों में मिला दिया गया है जिससे अर्थ का अनर्थ हो गया है। उदाहरणार्थ

रागु गौड़ी के बारहवें पद की दो पंक्तियाँ लीजिए :—

धौ मंदलिया बैलर बाब्री, कऊवा ताल बजावै ।
पहरि चोल नांगा दह नाचै, भैंसा निरति करावै ॥

यहाँ 'बैलर बाब्री' और 'चोल नांगा दह नाचै' का कोई अर्थ नहीं होता । वास्तव में 'बैलर बाब्री' के स्थान पर होना चाहिए 'बैल रबाब्री' और 'चोल नांगा दह नाचै' के स्थान पर 'चोलना गादह नाचै ।' इस प्रकार के अशुद्ध पाठ कबीर ग्रंथावली में भरे पड़े हैं । अतः कबीर की कविता का प्रामाणिक पाठ इस संस्करण द्वारा भी प्रस्तुत नहीं किया जा सका ।

कबीर का प्रामाणिक पाठ जानने के संबंध में हमारे पास कोई विशेष सामग्री नहीं है । कबीर ने पुस्तक-ज्ञान का सदैव तिरस्कार किया है । अतः इसमें संदेह है कि उन्होंने किसी ग्रंथ की रचना की होगी । उन्होंने जीवन और संसार पर चिंतन कर उपदेश दिए और शिष्यों ने उन्हें स्मरण रखकर बाद में पुस्तक रूप से प्रस्तुत किए । कबीर ने पुस्तकों से अध्ययन तो नहीं किया किंतु उन्होंने अपना ज्ञान सत्संग और स्वानुभूति से अवश्य अर्जित किया । वे साधारणतः पढ़े-लिखे हो सकते हैं क्योंकि अक्षर-ज्ञान से संबंध रखने वाली 'बावन अखरी' उन्होंने लिखी है । यह कहा जा सकता है कि 'पंद्रह तिथि' 'सात वार' और 'बावन अखरी' जोगेसुरीबानी की परंपरा हो सकती है और नाथपंथ से उसका विशेष प्रचार भी हो सकता है किंतु एक बात है । कबीर की 'पंद्रह थिंती' 'सात बार' के समानांतर गोरखबानी में 'पंद्रह तिथि' और 'सप्तवार' की रचना तो हमें मिलती है किंतु 'बावन अखरी' की रचना प्राप्त नहीं होती । 'बावन अखरी' की परंपरा की भी संभावना हो सकती है क्योंकि जायसी जैसे सूफ़ी सिद्धांत से प्रभावित कवि ने 'अखरावट' की रचना कर वर्णमाला के बावन अक्षरों के संकेत लिखे हैं । फिर भी 'बावन अखरी' से कबीर में अक्षर-ज्ञान की संभावना हम

मान सकते हैं। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि कबीर की गति साहित्य-शास्त्र में अधिक नहीं थी। यदि वे साहित्य-शास्त्र से परिचित होते तो अपनी भाषा का शृंगार अवश्य करते और उसका अक्खड़पन निश्चय दूर कर देते। उनकी भाषा में साहित्यगत संस्कार नहीं हैं और वह जन-समुदाय की भाषा का अपरिष्कृत रूप ही लिए हुए हैं। छदों में भी मात्रा और वर्ण की अनेक भूलें हैं। एक ही विचार अनेक बार दुहराया गया है। रूपक और उदाहरण साहित्य की परंपरा से नहीं लिए गए, वे जीवन की घटनाओं के प्रतिबिंब हैं। इस प्रकार उनकी भाषा और भाव-राशि साहित्य-क्षेत्र की परिधि से बाहर ही है। फिर जब उन्होंने एक बार भी 'लिखने' की बात नहीं कही तब उनकी वाणी का वास्तविक रूप प्राप्त होना कठिन ही नहीं, असंभव है।

कबीर के नाम से आज बहुत से ग्रंथ हमारे सामने हैं। वे स्वयं कबीर द्वारा रचित हैं अथवा उनके शिष्यों द्वारा, यह भी संदिग्ध है।

खोज रिपोर्ट

इतनी बात तो निश्चित है कि वे एक ही लेखक के द्वारा नहीं लिखे गए। उनमें शैली की बहुत भिन्नता है यद्यपि सभी शैलियों की भाषा में साहित्यिकता बहुत थोड़ी है। उसका कारण यह है कि इन सभी ग्रंथों के लेखक संत ही थे, कवि नहीं। उनका दृष्टिकोण धार्मिक सिद्धांतों का प्रचार था, साहित्य-शैलियों का निर्माण नहीं।

नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस की खोज रिपोर्ट के अनुसार सन् १६०१ से लेकर सन् १६२२ की खोज में कबीर द्वारा रचित ८५ प्रतियों की सूची मिलती है।

यदि स्वतंत्र ग्रंथों की गिनती की जाय तो वे अधिक से अधिक ५६ होंगे। किंतु क्या ये सभी ग्रंथ प्रामाणिक हैं? कुछ ग्रंथ तो ऐसे हैं जो केवल काल्पनिक कथावस्तु के आधार पर हैं, जैसे बलख की पैज, मुहम्मद बोध अथवा कबीर गोरष की गुष्टि। शाह बलख, मुहम्मद और

गोरखनाथ से कभी कबीर का संवाद हुआ ही न होगा क्योंकि ये सब कबीर के पूर्ववर्ती हैं। कबीरपंथी साधुओं ने कबीर साहब का महत्त्व बढ़ाने के लिए उनकी प्रशंसा में ये ग्रंथ लिख दिये होंगे। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट में कुछ ही ग्रंथों का लिपिकाल दिया गया है। इसके अनुसार सबसे पुराने हस्तलिखित ग्रंथ निम्नलिखित हैं:—

१	कबीर जी के पद	३	कबीर जी की साखी
२	कबीर जी की रमैनी	४	कबीर जी कौ कृत

इन ग्रंथों का लिपिकाल विक्रम संवत् १६४६ दिया गया है और रचनाकाल संवत् १६००। कबीर १६०० तक जीवित नहीं रहे यह निर्विवाद है। अतः ये ग्रंथ उनके द्वारा नहीं लिखे जा सकते; उनके शिष्यों द्वारा इनकी रचना कही जा सकती है। ये सभी ग्रंथ जोधपुर के राज्य-पुस्तकालय में सुरक्षित कहे गए हैं। मैंने जोधपुर के राज्य-पुस्तकालय से कबीर संबंधी सभी ग्रंथों की प्रतिलिपियाँ मँगवाईं। वहाँ से मुझे ८ हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हुईं जो निम्नलिखित हैं:—

जोधपुर राज्य पुस्तकालय के ग्रंथ

१	कबीर गोरष गुष्ट	(पत्र-संख्या ७)
२	कबीर जी की मात्रा	(,, १)
३	कबीर परिचय	(,, १३)
४	कबीर रैदास संवाद	(,, २)
५	कबीर साखी	(,, ३६)
६	कबीर धम्माल	(,, ११)
७	कबीर पद	(,, २४)
८	कबीर साखी	(,, ६)

इन प्रतियों में खोज रिपोर्ट द्वारा निर्दिष्ट 'कबीर जी कौ कृत' और 'कबीर जी की रमैनी' नहीं है। 'कबीर जी की साखी' और 'कबीर जी

के पद' अवश्य हैं। किंतु जोधपुर राज्य-पुस्तकालय से प्राप्त हुए एक ग्रंथ को छोड़कर किसी भी ग्रंथ में लिपिकाल नहीं दिया गया है। केवल 'कबीर गोरष गुष्ट' का काल संवत् १७६५ दिया गया है। अतः खोज रिपोर्ट का प्रमाण संदिग्ध और अविश्वसनीय है।

मैंने कबीर संबंधी अनेक हस्तलिखित ग्रंथ देखे हैं किंतु उनके शुद्ध रूप के संबंध में मुझे विश्वास कम हुआ है। इसके अनेक कारण हैं:—

अनेक हस्तलिखित ग्रंथ

१. कबीर-पंथ के अनुयायी प्रमुखतः समाज की निम्न श्रेणी के होने के कारण साहित्य और भाषा के ज्ञान में अत्यंत साधारण होंगे। अतः हस्तलिपि-लेखन में उनसे बहुत-सी भूलें हो सकती हैं।

२. कबीर का काव्य अधिकतर मौखिक ही रहा। वह गुरु के मुख में अधिक प्रभावशाली है, पुस्तक में नहीं। अतः कबीरपंथ में पुस्तक का महत्त्व गुरु से अपेक्षाकृत कम है। सद्गुरु का उपदेश 'कर्ण विभूषण' के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए, पुस्तक-पाठ से नहीं। इसलिए पुस्तक-पाठ सदैव अप्रधान समझा गया है। जब गुरु का उपदेश प्रधान हो गया तब परंपरागत पाठ में परिवर्तन होने की आशंका यथेष्ट हो जाती है। प्रत्येक गुरु उस पाठ में अपनी स्मरण-शक्ति के अनुसार कम या अधिक परिवर्तन कर सकता है। फिर गुरु हो जाने पर तो अपनी ओर से घटाने और बढ़ाने का अधिकार भी वह रख सकता है। इस प्रकार प्रथम पाठ से यह उपदेश कितना दूर होगा, यह अनुमान किया जा सकता है। फिर युगों के प्रवाह में सिद्धान्तों की रूप-रेखा में भी भिन्नता आ सकती है। नये सिद्धान्तों के बीच में पड़ कर कविता की दिशा दूसरी ही हो जाती है।

३. कबीर के सिद्धांत जनता में व्यापक रूप से प्रचलित थे। उनके विचार भिन्न-भिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न वर्ग के लोगों में प्रचारित होते

रहे। अतः प्रांतीयता के दृष्टिकोण से अथवा अशिक्षित जनता के संपर्क में आने से उनके पदों और साखियों में बहुत भिन्नता आ सकती है। कबीर ग्रंथावली का पंजाबीपन इस बात का प्रमाण है। भाषा और भावों को इस भिन्नता से बचाने के लिए कभी कोई संघ और संगीति की आयोजना नहीं हुई। न कभी कोई ऐसा प्रयत्न हुआ जिससे भिन्न-भिन्न प्रांतों में प्रचलित वाणी को एक रूप दे दिया जाता जैसा कि बौद्ध या जैन धर्मों में हुआ करता था। योग्य और मान्य आचार्यों के विचार-विनिमय अथवा परामर्श से जो काव्य में एकरूपता आती वह प्रक्षिप्त अथवा भूले हुए सिद्धांतों को व्यवस्थित कर सकती। किंतु इस प्रकार के प्रयत्न कबीरपंथ में कभी नहीं हुए।

४. हस्तलिखित ग्रंथों में जो पंक्तियाँ लिखी जाती हैं वे एक पूरी लकीर की लंबाई में कभी पूर्ण होती हैं, कभी अपूर्ण। यहाँ तक कि शब्द भी टूट जाते हैं। प्रतिलिप करने में ऐसे स्थलों पर अनेक भूलें हो जाती हैं। पंक्तियों में शब्द भी आपस में जुड़े रहते हैं और वे शब्द स्पष्टतः आँखों के सामने न रहने से कभी-कभी प्रतिलिपियों में छूट जाते हैं। ऐसे प्रसंग अनेक बार हस्तलिखित प्रतियों में पाये जाते हैं। इस संबंध में कबीर ग्रंथावली से एक उदाहरण दिया जा चुका है। एक पूरा शब्द जब पंक्ति के अंत में टूट जाता है तब कभी-कभी उसे दूसरी पंक्ति जोड़ने से भ्रांति हो जाती है। विराम चिह्नों के अभाव में यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

५. कहीं कहीं अशुद्ध शब्द या चरण के नीचे बिंदु रखकर उसे छोड़ने का संकेत होता है या उसपर हरताल लगा दी जाती हैं किंतु प्रतिलिपिकार उस बिंदु को न समझकर अथवा हरताल के हलके पड़ जाने से अशुद्ध शब्द या चरण की प्रतिलिपि कर ही लेता है। वह हाशिया में दिये हुए छोड़े गए शब्दों को पंक्तियों में जोड़ भी लेता है।

६. कहीं-पत्र संख्या न डालने से पदों के क्रम में भी बहुत अड़चन

पड़ जाती है। पृष्ठों के बजाय पत्रों पर ही संख्या लिखी जाती है। अतः एक पत्र की संख्या मिट जाने पर अपने संदर्भ की सूचना नहीं दे सकता जब तक कि उसमें कोई टूटा हुआ शब्द या चरण न हो। इस कठिनाई से वह पत्र ग्रंथ में कहां जोड़ा जाय यह एक प्रश्न हो जाता है यदि दो-तीन पत्रों के संबंध में ऐसी कठिनाई हो गई तो सारा हस्तलिखित ग्रंथ ही क्रम-विहीन हो जाता है। उदाहरण के लिए नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित कबीर ग्रंथावली में 'गोकलनाइक बीठुला मेरो मन लागौ तोहि रे' (पद ५) के बाद 'अब मैं पाइबौ रे ब्रह्म गियान' (पद ६) है किंतु जोधपुर-राज्य पुस्तकालय की 'अथ कबीर जी के पद' में ५ के बाद 'मन रे मन ही उलट समाना' पद है जो कबीर ग्रंथावली में ८वाँ पद है। अनुमान होता है कि जिस मूल प्रति से जोधपुर-राज्य पुस्तकालय की प्रतिलिपि बनाई गई होगी उसका एक पत्र खो गया होगा।

७. कबीर के काव्य की प्रतियाँ स्वयं कवि द्वारा अथवा किसी संस्था द्वारा न लिखी जाकर भिन्न-भिन्न स्थानों में तथा भिन्न-भिन्न युगों में की गई हैं। छपाई के अभाव में प्रामाणिक प्रतियों की प्रतिलिपियों में भी अनेक अशुद्धियां आ जाती हैं। किसी प्रति की जितनी ही अधिक प्रतिलिपियाँ होंगी उसमें अशुद्धियों का अनुपात उतना ही अधिक बढ़ता जावेगा। फिर बड़ी रचना होने के कारण एक ही प्रति की प्रतिलिपियों में अनेक व्यक्तियों का हाथ हो सकता है। वहाँ भूलें और भी अधिक हो सकती हैं। समानता का अभाव तो हो ही जायगा। फिर यदि लिपिकार अहंभाव से युक्त होगा तो वह पाठ को अपनी ओर से शुद्ध भी कर लेगा।

८. भाषा-विज्ञान के अनुसार अनेक पीढ़ियों में उच्चारण-भेद हो जाना स्वाभाविक है। अतः जब तक मूल प्रति या उससे की गई प्रामाणिक प्रति न मिले तब तक पाठ के संबंध में पूर्ण आश्वस्त होना

अत्यंत कठिन है।

६. किसी रचना के भिन्न-भिन्न पाठों में ठीक पाठ चुनने का कार्य यदि किसी गुरु के द्वारा किया भी गया तो उसके चुनाव की उपयुक्तता भी संदिग्ध ही है। और यदि चुना हुआ पाठ मूल पाठ से भिन्न है तो फिर मूल पाठ आगे चलकर सदैव के लिए ही लोप हो जाता है।

इस प्रकार प्रतिलिपिकारों की अज्ञानता, समय का अत्याचार, गुरुओं की अहम्मन्यता, छपाई के अभाव में हस्तलेखन की कठिनाइयाँ, कविता के भिन्न-भिन्न प्रांतों में व्यापक और मौखिक प्रचार ने कबीर के काव्य को मूल से कितना विकृत किया होगा इसका अनुमान हम सरलता से कर सकते हैं। जब तक किसी प्राचीनतम प्रति का अन्य समकालीन प्रतियों से मिलान कर शुद्ध पाठ प्रस्तुत न किया जाय तब तक हम कबीर के शुद्ध पाठ के संबंध में संतुष्ट नहीं हो सकते।

उपर्युक्त समीक्षा को दृष्टि में रखते हुए कबीर की रचना का प्रामाणिक पाठ प्राप्त करना कठिन है। मेरे सामने अधिक से अधिक विश्वसनीय पाठ श्री आदि गुरु ग्रंथ साहब का ज्ञान होता है।

श्री गुरु ग्रंथ साहब

श्री ग्रंथ साहब का संकलन पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव ने सन् १६०४ (संवत् १६६१) में किया था। सन् १६०४ का यह पाठ अत्यंत प्रामाणिक है। इसका कारण यह है कि आदि श्री गुरु ग्रंथ सिक्खों का धार्मिक ग्रंथ है। यह ग्रंथ सिक्खों द्वारा 'देव स्वरूप' पूज्य होने के कारण अपने रूप में अक्षुण्ण है और इसके पाठ को स्पर्श करने का साहस किसी को नहीं हो सका। यहाँ तक कि एक-एक मात्रा को मंत्रशक्ति से युक्त समझ कर उसे पूर्ववत् ही लिखने और छापने का क्रम चला आया है। यह ग्रंथ गुरुमुखी लिपि में है। जब गुरुमुखी लिपि से यह देवनागरी लिपि में छापा गया तब 'शब्द के स्थान शब्द' रूप में ही इसका रूपान्तर हुआ क्योंकि सिक्ख धर्म के अनुयायियों में विश्वास है कि 'महान् पुरुषों की तरफ से जो

अक्षरों के जोड़-तोड़ मंत्र रूप दिव्य वाणी में हुआ करते हैं, उनके मिलाप में कोई अमोघ शक्ती होती है जिसको सर्वसाधारण हम लोग नहीं समझ सकते। परंतु उनके पठन-पाठन में यथातथ्य उच्चारण से ही पूर्ण सिद्धि प्राप्त हो सकती है। इसके सिवाय यह भी है कि श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी के प्रतिशत ८० शब्द ऐसे हैं जो हिंदी पाठक ठीक-ठीक समझ सकते हैं। इस विचार के अनुसार ही यह हिंदी बीड़ गुरमुखी लिखत अनुसार ही रखी गई है अर्थात् केवल गुरमुखी अक्षरों के स्थान हिंदी (देवनागरी) अक्षर हो किये गये है।' (प्रकाशक की विनय पृष्ठ १, भाई मोहनसिंह वैद्य)।[1] इस प्रकार आदि श्री गुरु ग्रंथ साहब जी का जो पाठ सन् १०६४ में गुरु अर्जुनदेव जी द्वारा प्रस्तुत किया गया था, वह आज भी वर्तमान है। किसी पंडित द्वारा वह नहीं 'शोधा' गया। अतः इस पाठ को हम अधिक से अधिक प्रामाणिक पाठ मान सकते हैं। फिर गुरुमुखी जिसमें श्री गुरुग्रंथ साहब लिखा गया है, देवनागरी से अपेक्षाकृत कम प्रचलित है। अतः देवनागरी लिपि में प्रतिलिपिकारों से जितनी अशुद्धियों की संभावना हो सकती है उतनी गुरुमुखी लिपि की प्रतिलिपियों में नहीं।

गुरुमुखी लिपि में लिखे जाने पर भी कबीर के काव्य का व्याकरण पूर्वी हिंदी का रूप ही लिए हुए है। उसमें स्थान-स्थान पर पंजाबी प्रभाव अवश्य दृष्टिगत होता है किंतु प्रधान रूप से उसमें हमें पूर्वी हिंदी (अवधी) व्याकरण के रूप ही मिलते हैं। संस्कृत से आए हुए संज्ञा-प्रातिपदिकों (stems) के स्वरांत यद्यपि अवधी और पंजाबी में व्यंजनांत हो गए हैं तथापि पंजाबी में जो संयुक्त व्यंजन द्वित्व हो जाते हैं, वे अवधी में नहीं हैं।

व्याकरण

---

[1]आदि श्री गुरु ग्रंथ साहेब जी—मोहनसिंह वैद्य तरनतारन (अमृतसर) १६२७।

फिर भी कुछ पंजाबी प्रभाव उनकी भाषा पर दृष्टिगत होते ही हैं:—

किंतु ये सब प्रभाव कबीर की कविता पर गौण रूप से पड़े हैं उसी प्रकार जैसे कि खड़ी बोली और ब्रजभाषा के प्रभाव। प्रमुखतः कबीर की कविता पूर्वी हिंदी के रूप लिए हुए है और यह देख कर आश्चर्य होता है कि पंजाबी भाषा की धर्म पुस्तक श्री आदि गुरु ग्रंथ साहब में कबीर की कविता का पंजाबी संस्कार नहीं हुआ, वह अपने स्वाभाविक रूप में वर्तमान है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुरु अंगद जी ने तत्कालीन अधिक से अधिक प्रामाणिक पाठ संग्रह किया होगा और उसको उसी रूप में अपनी नवीन लिपि (जो लंडा लिपि का परिष्करण कर श्री गुरु ग्रंथ साहब में नियोजित की थी) में लिख दिया। यही बात हमें नामदेव जी के पदों में मिलती है जो श्री गुरु ग्रंथ साहब में हैं। नामदेव की भाषा मराठी है और गुरु ग्रंथ साहब में नामदेव की वाणी मराठी रूप ही में सुरक्षित है। अतः हम श्री गुरु ग्रंथ साहब में आए हुए कबीर के कविता-पाठ को अधिक से अधिक प्रामाणिक मानते हैं। खेद की बात है कि अभी तक हिंदी विद्वानों का ध्यान गुरु ग्रंथ साहब में कबीर के काव्य की ओर आकर्षित नहीं हुआ। संभवतः कारण यह हो कि उक्त ग्रंथ गुरुमुखी लिपि में है और उक्त लिपि से हिंदी भाषा-भाषियों का परिचय नहीं है। किंतु अब तो श्री भाई मोहनसिंह वैद्य ने खालसा प्रचारक प्रेस तरनतारन (पंजाब) से और सर्व हिंद सिख मिशन ने अमृत प्रिंटिंग प्रेस, अमृतसर से देवनागरी लिपि में श्री गुरु ग्रंथ साहब का प्रकाशन किया है। नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित कबीर ग्रंथावली के परिशिष्ट में श्री श्यामसुन्दरदास ने श्री गुरु ग्रंथ साहब में आए हुए कबीर के पदों को उद्धृत अवश्य किया है किंतु उसमें कुछ पद छूट गए हैं। श्री गुरु

संत कबीर का प्रस्तुत संस्करण

ग्रंथ साहब में कबीर की साखियों (सलोकों) की संख्या २४३ है। कबीर ग्रंथावली में केवल १९२ है। श्री गुरु ग्रंथ साहब में कबीर की पद-संख्या २२८ है, कबीर ग्रंथावली में केवल २२२ है। इस प्रकार कबीर ग्रंथावली में ३६ साखियाँ (सलोक) और ६ पद नहीं हैं जो श्री गुरु ग्रंथ साहब में हैं। मैंने 'संत कबीर' का सम्पादन श्री गुरु ग्रंथ साहब के पाठ के अनुसार ही बड़ी सावधानी से किया है। इसमें कबीर का काव्य पाठ्य-भाग और संख्या की दृष्टि से ठीक ठीक प्रस्तुत किया गया है। अतः कबीर की काव्य सम्बन्धी सभी सामग्री को देखते हुए 'संत कबीर' के पाठ को अधिक से अधिक प्रामाणिक समझना चाहिए।

कबीर का परिचय

पंद्रहवीं शताब्दी में मध्यदेश एक नवीन युग की प्रतीक्षा कर रहा था। उसकी संस्कृति को एक आघात लगा था और उसके आदर्श खँडहरों का रूप ले रहे थे। मुसलमान शासकों के बढ़ते हुए प्रभाव ने इस्लाम को जितनी अधिक शक्ति दी, उतनी ही अधिक व्यापकता भी। जनता के संपर्क में यह नया विश्वास दुर्निवार रूप से उसके जीवन के चारों ओर छा गया। हिंदू धर्म इस्लाम को अन्य विदेशी धर्मों की भाँति आत्म-सात् न कर सका क्योंकि इस्लाम सत्ता के साथ उठा था और उसकी प्रवृत्ति हिंदुओं के प्रति विरोधशील थी। हिंदू और मुसलमानों के संस्कारों की इस विषमता ने धार्मिक वातावरण में एक अशांति उत्पन्न कर दी थी। अनेक हिंदू मुसलमान हो गए थे और अनेक अपनी सत्य-निष्ठा में संत्रस्त थे। एक शरीर में जैसे दो प्राण हों जिनमें निरंतर संघर्ष होता हो।

इस्लाम अपने व्यावहारिक रूप में सरल हो, उसमें आचार की कष्टसाध्य परंपराएँ न हों, उसे राज्य-संरक्षण प्राप्त हो और उसे अंगी-कार करने पर पदाधिकार का ऐश्वर्य प्राप्त हो, फिर भी जिसकी

शिराओं में हिंदू दर्शन और शास्त्र की सूक्तियों ने रक्त बन कर प्राण-संचार किया हो उसे इस्लाम का सामीप्य शरीर पर उठे हुए व्रण की भांति कष्टकर क्यों न होता ?—फिर शासकों पर छाए हुए उलमाओं के प्रभाव ने—जो फ़ीरोज और सिकन्दर पर विशेष रूप से था—जिस धार्मिक असहिष्णुता को जन्म दिया था, वह पद-पद पर सांप्रदायिकता की आग लगा रही थी। एक ओर तो राजनीति की निरंकुशता भय और आतंक की सृष्टि करती दूसरी ओर सूफ़ियों की शांतिप्रिय और आध्यात्मिक दृष्टि हिंदू और मुसलमानों को अपनी ओर आकर्षित करते हुये उन्हें इस्लाम में श्रद्धा रखने के लिये प्रेरित करती थी। ऐसी स्थिति में हिंदू और मुसलमानों में किसी प्रकार का धार्मिक समझौता होना आवश्यक था। दोनों को एक ही देश में निवास करना था। दोनों में से एक भी अपना अस्तित्व खोने के लिए तैयार न था। विग्रह की नीति से दोनों की उन्नति का मार्ग बंद था। अतः एक धार्मिक समझौते के लिए परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं और मध्यदेश में एक नवीन युग का निर्माण हुआ। उस युग का सूत्रपात करने में संत कबीर का प्रमुख हाथ था।

जो लोग हिंदू धर्म का शास्त्रीय ज्ञान रखते थे उन्हें तो धर्म की वास्तविक पहिचान थी। वे कट्टरता से अपने धर्म का समर्थन करते थे और प्राणों के भय से भी धर्म-परिवर्तन के लिये तैयार न थे किंतु जो लोग धर्म को केवल जीवनगत विश्वास के रूप में मानते थे, जिन्हें धर्म की गूढ़ बातों से परिचय नहीं था, जो सांस्कृतिक आदर्शों का ज्ञान नहीं रखते थे उनके धर्म-परिवर्तन का प्रश्न विशेष महत्त्व नहीं रखता था। फिर पदाधिकार का प्रलोभन

कबीर का महत्त्व

एवं भौतिक जीवन का ऐश्वर्य उन्हें किसी भी धर्म की ओर आकर्षित कर सकता था, चाहे वह धर्म इस्लाम हो अथवा अन्य कोई। ऐसी जनता को अपने धर्म पर

दृढ़ रहने का बल केवल संत कबीर से ही प्राप्त हुआ। मुसलमानी संस्कृति में पोषित होकर भी उन्होंने ऐसे सर्वजननी सिद्धांतों का प्रचार किया जिनमें हिंदू धर्म को भी अपने स्थान पर स्थिर रहने की दृढ़ता प्राप्त हुई। हिंदू धर्म के जाति-बंधन की यंत्रणा से मुक्ति दिलानेवाला 'संतमत' कबीर के ही द्वारा प्रवर्त्तित हुआ जिसमें भगवान की भक्ति के लिए जाति की निकृष्टता बाधक नहीं है। यह सत्य है कि रामानंद ने उपासना-क्षेत्र में जाति-बंधन को शिथिल कर दिया था और अपने शिष्यों में समाज के निम्न श्रेणी के भक्तों को भी स्थान दिया था किंतु वे इस सिद्धांत को जनता में प्रचलित नहीं कर सके। तत्कालीन प्रभावों से अप्रभावित रहकर केवल हिंदू धर्म के सांप्रदायिक क्षेत्र में किंचित् स्वतंत्रत जनता को अधिक संतुष्ट नहीं कर सकी। काशी के धार्मिक और सांस्कृतिक मंडल में स्वयं रामानंद अधिक स्वतंत्र नहीं हो सके। फिर वे अपनी संकुचित स्वतंत्रता से जनता को युग-धर्म का स्पष्ट संदेश भी मुक्त-कंठ से नहीं दे सकते थे। जो व्यक्ति सूर्योदय के पूर्व ही पंचगंगाघाट से स्नान कर लौट आता हो, इस भय से कि किसी की कलुष-दृष्टि कहीं उस पर न पड़ जाय, वह 'समभाव' के सिद्धांत को कहाँ तक व्यावहारिक रूप दे सकेगा, यह स्पष्ट है। दूसरी ओर कबीर ने तत्कालीन परिस्थितियों का बल एकत्र कर युग-धर्म को पहचान कर एक निर्भीक संप्रदाय की सृष्टि की जिसमें 'ऐकेश्वरवाद' और 'समत्व सिद्धांत' की प्रमुख भावना थी। एक ईश्वर की दृष्टि में 'कीड़ी' और 'कुँजर' समान हैं, ब्राह्मण और चाण्डाल में कोई भेद नहीं। दोनों में एक ही ब्रह्म की ज्योति है जिस प्रकार काली और सफ़ेद गाय में एक ही रंग का दूध है।

हिंदुओं के समस्त धार्मिक साहित्य की रचना संस्कृत में थी। फलतः धर्म-ग्रंथों का अध्ययन या तो ब्राह्मण पंडितों तक ही सीमित था अथवा ऐसे व्यक्तियों तक जो किसी भाँति चेष्टा कर विद्याध्ययन करने में

समर्थ हो सकते थे। साधारण जनता धर्म के शास्त्रीय ज्ञान से संपर्क रखने में अपने को अयोग्य पाती थी। अतः धार्मिक सिद्धांतों को जनता के समीप तक उन्हीं की भाषा में पहुँचाने का श्रेय कबीर को है। रामानंद की शक्ति का आश्रय लेकर कबीर ने साधारण भाषा के द्वारा अपने मार्मिक सिद्धांतों को अत्यंत स्पष्ट रूप में जनता के सामने रक्खा। उस समय भाषा बन रही थी। मध्यदेश की भाषा में उस समय साहित्य की रचना नहीं के बराबर थी। अमीर ख़ुसरो की पहेलियाँ जीवन के किसी गंभीर तथ्य का निरूपण नहीं कर सकी थीं, उनमें केवल मनोरंजन और कौतूहल था। नाथ संप्रदाय की रचनाओं में भी भाषा का माध्यम लिया गया किंतु वे समस्त रचनाएँ प्रश्नोत्तर के रूप में होकर केवल सिद्धांतोक्तियाँ ही बन कर रह गईं। यदि कहीं वर्णन भी है तो वह उपासना पद्धति के नीरस विशिष्ट रूपकों में। कबीर ने सब से पहले भाषा में जीवन की जटिल समस्याओं को सुलझाया और धर्म और दर्शन के ऐसे सिद्धांत निरूपित किए जो सरलता से जनता द्वारा हृदयंगम किए जा सकते थे। यह मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि नाथपंथ की विचार-शैली और रूपक-रहस्य का प्रभाव कबीर पर विशेष रूप से पड़ा है। उन्होंने सिद्धांत और वाक्य भी नाथ-पंथ से प्राप्त किए हैं किंतु कबीर नाथपंथ के आदर्शों तक ही नहीं रुक गए उन्होंने नाथपंथ से प्राप्त की गई सामग्री को अधिक व्यावहारिक और जन-सुलभ बनाने की चेष्टा की। जीवन के अंग-प्रत्यंग की समीक्षा कर उन्होंने धर्म और जीवन को इतना सरल और सुगम साधना-संपन्न बनाया कि वह प्राणों में निवास करने योग्य बन गया। यह प्रचार उन्हें जनता के बीच करना था। अतः स्पष्ट और शक्ति-संपन्न शैली ही इस उद्देश्य के उपयुक्त थी। जो कबीर के काव्य की तुलना तुलसी के काव्य से करना चाहते हैं उन्हें तत्कालीन भाषा और जनता की मनोवृत्ति नहीं भूल जानी चाहिए। कबीर को साहित्यिक भाषा का

शिलान्यास करना था और अन्यवस्थित धार्मिक विषमता के प्रथम आघात को रोकने का प्राचीर खड़ा करना था। काव्य के अंगों का सुकुमार सौंदर्य जनता के जर्जरित विश्वासों को आकर्षित न कर सकता था। प्रेम और आख्यानक काव्य की प्रशस्त परंपरा ने तुलसी की अनेक कठिनाइयाँ हल कर दी थीं और वे अपने आदर्शों और घटना-सूत्रों को अधिक काव्य-सौंदर्य और प्रतिभा-पटों से सुसज्जित कर सकते थे। कबीर ने अपनी प्रखर भाषा और तीखी भाव-व्यंजना से जिस काव्य का सृजन किया वह साहित्यिक मर्यादा का अतिक्रमण भले ही कर गया हो किंतु उसके द्वारा साहित्य और धर्म में युगांतर अवश्य आया। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच की सांप्रदायिक सीमा तोड़ कर उन्हें एक ही भावधारा में बहा ले जाने का अपूर्व बल कबीर के काव्य में था। और यह बल जनता के बीच बोली और समझी जाने वाली रूखी और अपरिष्कृत भाषा के ऊपर अवलंबित था जिसमें धार्मिक पाखंडों और अंधविश्वासों को तोड़ने का विद्युत-वेग था। जहाँ भारतीय समाज में हिंदू और मुसलमानों के बीच बंधुत्व भाव का अंकुर उत्पन्न करना कबीर का अभिप्राय था वहाँ व्यक्तिगत साधना की पुनीत अनुभूति भी उनका लक्ष्य था। अपने स्वाधीन और निर्भीक विचारों से उन्होंने सुधार के नवीन मार्ग की ओर संकेत किया। उनकी सम-दृष्टि ने ही उन्हें सार्वजनीन और सार्वभौमिक बना दिया।

कबीर के इस काव्य में जो जीवन संबंधी सिद्धांत हैं उनका आधार शास्त्रीय ग्रंथ नहीं हैं। उन्होंने इन सिद्धांतों को अनुभूत अथवा दैनिक जीवन में प्रतिदिन घटित होने वाली परिस्थितियों के प्रकाश में ही लिखा है। उनके तर्क दर्शन-सम्मत न हों किंतु वे सहज ज्ञान से ओत-प्रोत हैं। नग्न घूमने से यदि योग मिलता तो वन के सभी मृग मुक्त हो जाते। सिर का मुंडन कराने से यदि सिद्धि पाई जा सकती तो मुक्ति की ओर भेड़ क्यों न चली गई? इस प्रकार के तर्क पंडित और

शास्त्रियों द्वारा मान्य नहीं हो सकते तथापि जनता के हृदय में सत्य और विश्वास की अमिट रेखा खींच सकते हैं क्योंकि इस प्रकार के तर्क उनके अनुभव से दूर नहीं हैं। इसलिए जहाँ शास्त्रियों और समाज के उच्च वर्ग के व्यक्तियों में कबीर के सिद्धांतों के लिए आदर नहीं है, वहाँ साधारण जनता समस्त श्रद्धा-संपत्ति से उन सिद्धांतों का गीत गाती है। कबीर ने इन्हीं अनुभूत सिद्धांतों और जीवन की वास्तविकताओं द्वारा अपने काव्य को श्री-संपन्न किया है। पुस्तक-ज्ञान की अपेक्षा वे अनुभव-ज्ञान को अधिक महत्त्व देते हैं। पुस्तक-ज्ञान से तो अहंकार का विष उत्पन्न होता है किंतु जीवन के सहज ज्ञान से संतोष और विश्वास का मधुर रस मन में संचरित होने लगता है।

जीवन-वृत की आलोचना

कबीर ने अपने व्यक्तिगत निर्देशों में कोई तिथि या संवत् का उल्लेख नहीं किया। अतः अंतर्साक्ष्य से हम उनके आविर्भाव काल अथवा निधन-काल के संबंध में कुछ भी नहीं कह सकते। उनका जन्म ऐसे जुलाहे कुल में हुआ था जिसमें उनके संत-जीवन के लिए विशेष सुविधाएँ थीं। कबीर ने अपने पिता को एक बड़ा गोसाईं कहा है। बनारस और उसके आसपास उस समय के गोसाईं 'दसनामी' भेद से अपनी उपासना में कहीं शिव और कहीं विष्णु के भक्त होते थे। कबीर के पिता ऐसी जुलाहा जाति में थे जिसमें मुसलमानी संस्कारों के साथ ही साथ शिवोपासक योगियों के भी संस्कार थे और वे किसी शिवोपासक 'दसनामी' संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण गोसाईं कहलाते थे। इस समय नाथपंथ का प्रभाव इन योगियों पर विशेष रूप से था जिससे वे 'शरीर-साधन' की परंपरा में विश्वास रखते थे। कबीर ने अपने पिता का निर्देश करते हुए यह भी स्पष्ट रूप से कहा है कि "मैं उस पिता की बलि जाता हूँ जिनसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ।

उन्होंने पंच (इंद्रियों) से मेरा साथ छुड़ा दिया है, अब मैंने पंच (इंद्रियों के विष) को मार कर पैरों के नीचे दबा दिया है" अतः यह स्पष्ट है कि कबीर के पिता जुलाहों की जाति में होकर भी योगियों के आचारों में विश्वास रखते थे। इस संबंध में मैं श्री हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत से सहमत हूँ जिनके अनुसार कबीर जिस जुलाहा वंश में पालित हुए थे 'वह इसी प्रकार के नाथ मतावलंबी गृहस्थ योगियों का मुसलमानी रूप था।' योगियों की परम्परा में होने के कारण कबीर के कुल में 'राम' नाम के लिए विशेष श्रद्धा न होगी इसलिए जब रामानंद के प्रभाव से कबीर ने राम-नाम स्वीकार किया होगा तो उनकी माता का क्षुब्ध होना स्वाभाविक था।

कबीर के जन्म के विषय में जो किंवदंती है कि वे विधवा ब्राह्मणी के पुत्र थे और उस विधवा ब्राह्मणी ने लोक-लज्जा की रक्षा के लिए उन्हें लहरतारा तालाब के समीप फेंक दिया था तथा इस अवस्था में उन्हें नीरू और नीमा जुलाहा-दंपति ने उठा लिया था, कोई विशेष महत्त्व नहीं रखती। हमारे सामने इस प्रकार का कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। इसी भाँति उनका ज्योति-स्वरूप होकर लहरतारा के कमल-पत्र पर उतर कर शयन करना एक धार्मिक विश्वास है। इस संबंध में कुछ भी कहना कबीर-पंथियों की धार्मिक भावना पर आघात पहुँचाना है।

कबीर का जन्म-स्थान अभी तक 'काशी' माना जाता रहा है और इस संबंध में प्रायः ये पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं—'काशी में हम प्रकट भये हैं, रामानंद चिताए।' किंतु ये पंक्तियाँ न तो 'संत कबीर' में हैं और न किसी प्रामाणिक पोथी में ही पाई जाती हैं।' 'संत कबीर' में कबीर की एक पंक्ति ऐसी है जिससे ज्ञात होता है कि वे मगहर में ही उत्पन्न हुए थे। पहले दरसन मगहर पाँइओं पुनि कासी बसे आई।' (रागु रामकली ३) यथेष्ट संकेतपूर्ण है। मृत्यु के समय

उनका मगहर लौट जाना मनुष्य की उस स्वाभाविक प्रेरणा का भी प्रतीक हो सकता है जिससे वह अपनी जन्मभूमि या उसके समीप ही आकर मरना चाहता है। अतः मेरे दृष्टिकोण से कबीर का मगहर में जन्म मानना अधिक युक्तिसंगत है।

कबीर के पारिवारिक जीवन के संबंध में मतभेद है। कबीरपंथी साधुओं का कथन है लोई उनकी शिष्या मात्र थी, स्त्री नहीं। वह एक बनखंडी बैरागी की पोष्य पुत्री थी जिसे उसने लोई (ऊनी चादर) में लिपटा हुआ पाया था। कबीर की भक्ति और निस्पृह भावना देखकर वह उनके साथ रहने लगी थी। किंतु कबीर की 'मेरी बहुरिया को धनिआ नाउ' (रागु आशा ३३) और 'बूड़ा बंसु कबीर का उपजिओ पूतु कमालु' (सलोकु ११५) निश्चित रूप से सिद्ध करते हैं कि कबीर का पारिवारिक जीवन स्त्री और पुत्र से भरपूर था। उनसे चाहे कबीर को संतोष न रहा हो, यह दूसरी बात है। 'धनिआ' नाम के स्थान पर हमें 'धोई' नाम भी मिलता है जिसका संकेत श्री बनमाली जी 'कबीर का साखी ग्रंथ' की अवतरणिका में करते हैं।

कबीर ने जिस गुरु की विस्तार-पूर्वक-वंदना की है वे श्री रामानंद जी ही थे। कबीर को अपने निर्भीक धार्मिक विश्वासों के कारण सिकंदर लोदी से भी संघर्ष लेना पड़ा। इस विषय की यथेष्ठ चर्चा कबीर की जन्म-तिथि के संबंध में हो चुकी है अतः यहाँ कुछ और लिखने की आवश्यकता नहीं। कबीर की मृत्यु के संबंध में भी निश्चित है कि उन्होंने मगहर में जाकर अपना शरीर-त्याग किया।



सिरी रागु

१

एक सुआनु कै घरि गावणा ।
जननी जानत सुतु बडा होतु है
इतनाकु न जानै जि दिन दिन अवध घटतु है ॥
मोर मोर करि अधिक लाडु धरि पेखत ही जमराउ हसै ॥
ऐसा तैं जगु भरमि लाइआ ।
कैसे बूझै जब मोहिआ है माइआ ॥१॥
कहत कबीर छोडि बिखिआ रस
इतु संगति निहचउ मरणा ॥
रमईआ जपहु प्राणी अनत जीवण
बाणी इन बिधि भव सागरु तरणा ॥२॥
जां तिसु भावै ता लागै भाउ ।
भरमु भुलावा बिचहु जाइ ।
उपजै सहजु गिआन मति जागै ।
गुर प्रसादि अंतरि लिव लागै ॥
इतु संगति नाही मरणा ।
हुकमु पछाणि ता खसमै मिलणा ॥३॥

२

अचरज एकु सुनहु रे पंडीआ
अब किछु कहनु न जाई ।
सुरि नर गण गंध्रब जिनि मोहे
त्रिभवण मेखुली लाई ॥
राजा राम अनहद किंगुरी बाजै
जाकी दिसटि नाद लिव लागै ॥१॥

भाठी गगनु सिंङिआ अरु चुंङआ
कनक कलस इकु पाइआ ।
तिसु महि धार चुऐ अति निरमल
रस महि रसन चुआइआ ॥२॥
एक जु बात अनूप बनी है
पवन पिआला साजिआ ।
तीनि भवन महि एको जोगी
कहहु कवनु है राजा ॥३॥
ऐसे गिआन प्रगटिआ पुरखोतम
कहु कबीर रंगि राता ।
अउर दुनी सभ भरमि भुलानी
मनु राम रसाइन माता ॥४॥

राग गउड़ी

१

अब मोहि जलत राम जलु पाइआ ।
राम उदकि तनु जलतु बुझाइआ ॥
मनु मारण कारणि बन जाईऐ ।
सो जलु बिनु भगवंत न पाईऐ ॥१॥
जिह पावक सुरि नर है जारे ।
राम उदकि जन जलत उबारे ॥२॥
भव सागर सुख सागर माही ।
पीवि रहे जल निखुटत नाही ॥३॥
कहि कबीर भजु सारिंगपानी ।
राम उदकि मेरी तिखा बुझानी ॥४॥

२

माधउ जल की पियास न जाइ ।
जल महि अगनि उठी अधिकाइ ॥
तूं जलनिधि हउ जल का मीनु ।
जल महि रहउ जलहि बिनु खीनु ॥१॥
तूं पिंजरु हउ सूअटा तोर ।
जमु मंजारु कहा करै मोर ॥२॥
तूं तरवरु हउ पंखी आहि ।
मंदभागी तेरो दरसनु नाहि ॥३॥
तूं सतिगुरु हउ नउतनु चेला ।
कहि कबीर मिलु अंत की बेला ॥४॥

३

जब हम एको एकु करि जानिआ ।
तब लोगह काहे दुखु मानिआ ॥

हम अपतह अपुनी पति खोई ।
हमरै खोजि परहु मति कोई ॥१॥
हम मंदे मंदे मन माही ।
साझ पाति काहू सिउ नाही ॥२॥
पति अपति ताकी नही लाज ।
तब जानहुगे जब उघरैगो पाज ॥३॥
कहु कबीर पति हरि परवानु ।
सरब तिआगि भजु केवल रामु ॥४॥

४

अवर मूए किआ सोगु करीजै ।
तउ कीजै जउ आपन जीजै ॥
मै न मरउ मरिबो संसारा ।
अब मोहि मिलिओ है जी आवन हारा ॥१॥
इआ देही परमल महकंदा ।
ता सुख बिसरे परमानंदा ॥२॥
कूअटा एकु पंच पनिहारी ।
टूटी लाजु भरै मति हारी ॥३॥
कहु कबीर इक बुधि बीचारी ।
ना ओहु कूअटा ना पनिहारी ॥४॥

५

असथावर जंगम कीट पतंगा ।
अनिक जनम कीए बहु रंगा ॥
ऐसे घर हम बहुतु बसाए ।
जब हम राम गरभ होइ आए ॥१॥
जोगी जती पती ब्रहमचारी ।
कबहू राजा छत्रपति कबहू भेखारी ॥२॥

साकत मरहि संत सभि जीवहि ।
राम रसाइनु रसना पीवहि ॥३॥
कहु कबीर प्रभ किरपा कीजै ।
हारि परे अब पूरा दीजै ॥४॥

६

ऐसो अचरजु देखिओ कबीर ।
दधि कै भो लै बिरोलै नीरु ॥
हरि अंगूरी गदहा चरै ।
नित उठि हासै हीगै मरै ॥१॥
माता भैसा अंमुहा जाइ ।
कुदि कुदि चरै रसातलि पाइ ॥२॥
कहु कबीर परगटु भई खेड ।
लेले कउ चूघै नित भेड ॥३॥
राम रमत मति परगटी आई ।
कहु कबीर गुरि सोझी पाई ॥४॥

७

जिउ जल छोडि बाहरि भइओ मीना ।
पूरब जनम हउ तप का हीना ॥
अब कहु राम कवन गति मोरी ।
तजीले बनारस मति भई थोरी ॥१॥
सगल जनमु सिवपुरी गवाइआ ।
मरती बार मगहरि उठि आइआ ॥२॥
बहुतु बरस तपु कीआ कासी ।
मरनु भइआ मगहर की बासी ॥३॥
कासी मगहर सम बीचारी ।
ओछी भगति कैसे उतरसि पारी ॥४॥

कहु गुर गजि सिव सभु को जानै ।
मुआ कबीरु रमत स्री रामै ॥५॥

८

चोआ चंदन मरदन अंगा ।
सो तनु जलै काठ कै संगा ॥
इसु तन धन की कवन बडाई ।
धरनि परै उरवारि न जाई ॥१॥
राति जि सोवहि दिनकरहि काम ।
इकु खिनु लेहि न हरि को नाम ॥२॥
हाथि तडोर मुखि खाइओ तंबोर ।
मरती बार कसि बाधिओ चोर ॥३॥
गुरमति रसि रसि हरि गुन गावै ।
रामै राम रमत सुखु पावै ॥४॥
किरपा करि कै नामु द्रिड़ाई ।
हरि हरि बासु सुगंध बसाई ॥५॥
कहत कबीर चेति रे अंधा ।
सति रामु झूठा सभु धंधा ॥६॥

९

जम ते उलटि भए है राम ।
दुख बिनसे सुख कीओ बिसराम ॥
बैरी उलटि भए है मीता ।
साकत उलटि सुजन भए चीता ॥
अब मोहि सरब कुसल करि मानिआ ।
सांति भई जब गोबिदु जानिआ ॥१॥
तन महि होती कोटि उपाधि ।
उलटि भई सुख सहजि समाधि ॥

आपु पछानै आपै आप ।
रोगु न बिआपै तीनौ ताप ॥२॥
अब मनु उलटि सनातनु हूआ ॥
तब जानिआ जब जीवत मूआ ॥
कहु कबीर सुखि सहजि समावउ ।
आपि न डरउ न अवर डरावउ ॥३॥

१०

पिंडि मुऐ जीउ किह घरि जाता ।
सबदि अतीति अनाहदि राता ॥
जिनि रामु जानिआ तिनहि पछानिआ ।
जिउ गुंगे साकरु मनु मानिआ ॥१॥
ऐसा गिआनु कथै बनवारी ।
मन रे पवन द्रिड़ सुखमन नारी ॥
सो गुरु करहु जि बहुरि न करना ।
सो पदु रवहु जि बहुरि न रवना ॥
सो धिआनु धहुरि जि बहुरि नधरना ।
ऐसे मरहु जि बहुरि न मरना ॥२॥
उलटी गंगा जमुन मिलावउ ।
बिनु जल संगम मन महि न्हावउ ॥
लोचा समसरि इहु बिउहारा ।
ततु बीचारि किआ अवरि बीचारा॥३॥
अपु तेजु बाइ प्रिथमी अकासा।
ऐसी रहत रहउ हरि पासा ॥
कहै कबीर निरंजन धिआवउ ।
तितु घरि जा जि बहुरि न आवउ ॥४॥

११

सुखु मांगत दुखु आगै आवै ।
सो सुखु हमहु न मांगिआ भावै ॥
बिखिआ अजहु सुरति सुख आसा ।
कैसे होई है राजा राम निवासा ॥१॥
इसु सुख तै सिव ब्रहम डराना ।
सो सुखु हमहु साचु करि जाना ॥२॥
सनकादिक नारद मुनि सेखा ।
तिन भी तन महि मनु नही पेखा ॥३॥
इसु मन कउ कोई खोजहु भाई ।
तन छूटे मनु कहा समाई ॥४॥
गुर प्रसादी जैदेउ नामां ।
भगति कै प्रेमि इनही है जाना ॥५॥
इसु मन कउ नही आवन जाना ।
जिसका भरमु गइआ तिनि साचु पछाना ॥६॥
इसु मन कउ रूपु न रेखिआ काई ।
हुकमे होइआ हुकमु बूझि समाई ॥७॥
इस मन का कोई जानै भेउ ।
इह मनि लीण भए सुखदेउ ॥८॥
जीउ एकु अरु सगल सरीरा ।
इसु मन कउ रवि रहे कबीरा ॥९॥

१२

अहिनिसि एक नाम जो जागे ।
केतक सिध भए लिव लागे ॥
साधक सिध सगल मुनि हारे ।
एक नाम कलिप तर तारे ॥१॥

जो हरि हरे सु होहि न आना ।
कहि कबीर राम नाम पछाना ॥२॥

१३

रे जीअ निलज लाज तुहि नाही ।
हरि तजि कत कहू के जांही ॥
जाको ठाकुरु ऊचा होई ।
सो जनु पर घर जात न सोही ॥१॥
सो साहिबु रहिआ भरपूरि ।
सदा संगि नाही हरि दूरि ॥२॥
कवला चरन सरन है जा के ।
कहु जन का नाही घर ता के ॥३॥
सभु कोऊ कहै जासु की बाता ।
सो संम्रथु निज पति है दाता ॥४॥
कहै कबीरु पूरन जग सोई ।
जाकै हिरदै अवरु न होई ॥५॥

१४

कउनु को पूतु पिता को का को ।
कउनु मरै को देइ संतापो ॥
हरि ठग जग कउ ठगउरी लाई ।
हरि के बिओग कैसे जीअउ मेरी माई ॥१॥
कउन को पुरखु कउन की नारी ।
इआ तत लेहु सरीर बिचारी ॥२॥
कहि कबीर ठग सिउ मनु मानिआ ।
गई ठगउरी ठगु पहिचानिआ ॥३॥

१५

अब मो कउ भए राजा राम सहाई ।
जनम मरन कटि परम गति पाई ॥
साधू संगति दीओ रलाइ ।
पंच दूत ते लीओ छुडाइ ।
अंम्रित नामु जपउ जपु रसना ।
अमोल दासु करि लीनो अपना ॥१॥
सतिगुर कीनो पर उपकारु ।
काढि लीन सागर संसार ॥
चरन कमल सिउ लागी प्रीति ।
गोबिंदु बसै निता नित चीत ॥२॥
माइआ तपति बुझिआ अंगिआरु ।
मनि संतोखु नामु आधारु ॥
जलि थलि पूरि रहे प्रभ सुआमी ।
जत पेखउ तत अंतरजामी ॥३॥
अपनी भगति आप ही द्रिड़ाई ।
पूरब लिखतु मिलिआ मेरे भाई ॥
जिसु क्रिपा करे तिसु पूरन साज ।
कबीर को सुआमी गरीबनिवाज ॥४॥

१६

जलि है सूतकु थल है सूतकु सूतक ओपति होई ।
जनमे सूतकु मूए फुनि सूतकु सूतक परज बिगोई ॥
कहु रे पंडीआ कउन पवीता ।
ऐसा गिआनु जपहु मेरे मीता ॥१॥
नैनहु सूतकु बैनहु सूतकु सूतकु स्रवनी होई ।
ऊठत बैठत सूतकु लागै सूतकु परै रसोई ॥२॥

फासन की विधि सभु कोऊ जानै छूटन की इकु कोई ।
कहि कबीर रामु रिदै बिचारै सूतकु तिन्है न होई ॥३॥

१७

झगरा एकु निबेरहु राम ।
जउ तुम अपने जन सौ कामु ॥
इहु मनु बड़ा कि जा सउ मनु मनिआ ।
रामु बड़ा कै रामहिं जानिआ ॥१॥
ब्रहमा बड़ा कि जासु उपाइआ ।
बेदु बड़ा कि जहां ते आइआ ॥२॥
कहि कबीर हउ भइआ उदासु ।
तीरथु बड़ा कि हरि का दासु ॥३॥

१८

देखौ भाई ज्ञान की आई आंधी ।
सभै उडानी भ्रम की टाटी रहै न माइआ बांधी ॥
दुचिते की दुइ थूनि गिरानी मोहु बलेंडा टूटा ।
तिसना छानि परी धर ऊपरि दुरमति भाँडा फूटा ॥१॥
आंधी पाछै जो जलु बरखै तिहि तेरा जनु भीनां ।
कहि कबीर मनि भइआ प्रगासा उदै भानु जब चीना ॥२॥

१९

हरि जसु सुनहि न हरि गुन गावहि ।
बातन ही असमानु गिरावहि ॥
ऐसे लोगन सिउ किआ कहीऐ ।
जो प्रभ कीए भगति ते बाहज तिन ते सदा डराने रहीऐ ॥१॥
आपि न देहि चुरू भरि पानी ।
तिह निंदहि जिह गंगा आनी ॥२॥

बैठत उठत कुटिलता चालहि ।
आपु गए अउरन हू घालहि ॥३॥
छाडि कुचरचा आन न जानहि ।
ब्रहमा हू को कहिओ न मानहि ॥४॥
आपु गए अउरन हू खोवहिं ।
आगि लगाइ मंदर मै सोवहि ॥५॥
अवरन हसत आप हहि कांने ।
तिन कउ देखि कबीर लजाने ॥६॥

२०

जीवत पितर न माने कोऊ मूएं सराध कराही ।
पितर भी बपुरे कहु किउ पावहि कऊआ कूकर खाही ॥
मो कउ कुसलु बतावहु कोई ।
कुसल कुसलु करते जगु बिनसै कुसलु भी कैसे होई ॥१॥
माटी के करि देवी देवा तिसु आगै जीउ देही ।
ऐसे पितर तुमारे कहीअहि आपन कहिआ न लेही ॥२॥
सरजीउ काटहि निरजीउ पूजहि अंतकाल कउ भारी ।
राम नाम की गति नही जानी भै डूबे संसारी ॥३॥
देवी देवा पूजहि डोलहि पारब्रहमु नही जाना ।
कहत कबीर अकुलु नही चेतिआ बिखिआ सिउ लपटाना ॥४॥

२१

जीवत मरै मरै फुनि जीवै ऐसे सुंनि समाइआ ।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ बहुड़ि न भव जलि पाइआ ॥
मेरे राम ऐसा खीरु बिलोईऐ ॥
गुर मति मनूआ असथिरु राखहु इनि बिधि अंम्रितु पीओईऐ ॥१॥
गुर कै बाणि बजर कल छेदी प्रगटिआ पदु परगासा ।
सकति अधेर जेवड़ी भ्रमु चूका निहचलु सिव घरि बासा ॥२॥

तिनि बिनु बाणै धनखु चढाइअै इहु जगु बेधिआ भाई ।
दह दिस बूडी पवन झुलावै डोरि रही लिव लाई ॥३॥
उनमनि मनूआ सुंनि समाना दुबिधा दुरमति भागी ।
कहु कबीर अनभउ इकु देखिआ राम नामि लिव लागी ॥४॥

२२

× उलटत पवन चक्र खटु भेदे सुरति सुंन अनरागी ।
आवै न जाइ मरै न जीवै तासु खोजु बैरागी ॥
मेरे मन मन ही उलटि समाना ।
गुर परसादि अकलि भई अवरै न तरु था बेगाना ॥१॥
निवरै दूरि दूरि फुनि निवरै जिन जैसा करि मानिआ ।
अलउती का जैसे भइआ बरेडा जिनि पीआ तिनि जानिआ ॥२॥
तेरी निरगुन कथा काइ सिउ कहीऐ ऐसा कोइ बिबेकी ।
कहु कबीर जिनि दीआ पलीता तिनि तैसी झल देखी ॥३॥

२३

तह पावस सिंधु धूप नही छहीआ तह उतपति परलउ नाही ।
जीवन मिरतु न दुखु सुखु बिआपै सुन समाधि दोऊ तह नाही ॥
सहज की अकथ कथा है निरारी ।
तुलि नही चढै जाइ न मुकाती हलुकी लगै न भारी ॥१॥
अरध उरध दोऊ तह नाही राति दिनसु तह नाही ।
जलु नही पवनु पावकु फुनि नाही सतिगुर तहा समाही ॥२॥
अगम अगोचरु रहै निरंतरि गुर किरपा ते लहीऐ ।
कहु कबीर बलि जाउ गुर अपुने सत संगति मिलि रहीऐ ॥३॥

२४

× पापु पुंनु दुइ बैल बिसाहे पवनु पूजी परगासिओ ।
त्रिसना गूणि भरी घट भीतरी इन बिधि टांड बिसाहिओ ॥

ऐसा नाइकु रामु हमारा ।
सगल संसारु किओ बनजारा ॥१॥
कामु क्रोधु दुइ भये जगाती मन तरंग बटवारा ।
पंच ततु मिलि दानु निबेरहि टांडा उतरिओ पारा ॥२॥
कहत कबीरु सुनहु रे संतहु अब ऐसी बनि आई ।
घाटी चढत बैलु इकु थाका चलो गोनि छिटकाई ॥३॥

२५

× पेवकड़ै दिन चारि है साहुरड़ै जाणा ।
अंधा लोकु न जाणई मूरखु एआणा॥
कहु डडीआ बाधै धन खड़ी ।
पाहू घरि आए मुकलाऊ आए ॥१॥
ओह जि दिसै खूहड़ी कउन लाजु वहारी ।
लाजु घड़ी सिउ तूटि पड़ी उठि चली पनिहारी ॥२॥
साहिबु होइ दइआलु क्रिपा करे अपुना कारजु सवारे ।
ता सोहागणि जाणीऐ गुर सबदु बीचारे ॥३॥
किरत की बांधी सभ फिरै देखहु बीचारी ।
एस नो किआ आखीऐ किआ करै विचारी ॥४॥
भई निरासी उठि चली चित बंधि न धीरा ।
हरि की चरणी लागि रहु भजु सरणि कबीरा ॥५॥

२६

× जोगी कहहि जोगु भल मीठा अवरु न दूजा भाई ।
रुंडित मुंडित एकै सबदी एइ कहहि सिधि पाई ।
हरि बिनु भरमि भुलाने अंधा ।
जा पहि जाउ आपु छुटकावनि ते बाधे बहु फंधा ॥१॥
जह ते उपजी तही समानी इहि बिधि बिसरी तब ही ।
पंडित गुणी सूर हम दाते एहि कहहि बड हम ही ॥२॥

जिसहि बुझाए सोई बूझै बिनु बूझे किउ रहीऐ ।
सतिगुरु मिलै अंधेरा चूकै इन बिधि माणकु लहीऐ ॥३॥
तजि बावे दाहने बिकारा हरि पदु द्रिड़ु करि रहीऐ ।
कहु कबीर गूंगै गुड़ु खाइआ पूछे ते किआ कहीऐ ॥४॥

२७

जह कछु अहा तहा किछु नाही पंच ततु तह नाही ।
इड़ा पिंगला सुखमन बंदे ए अवगन कत जाही ॥
तागा तूटा गगनु बिनसि गइआ तेरा बोलतु कहा समाई ।
एह संसा मो कउ अनदिनु बिआपै मो कउ को न कहै समझाई ।१।
जह बरभंडु पिंडु तह नाही रचनाहारु तह नाही ।
जोड़णहारो सदा अतीता इह कहीऐ किसु माही ॥२॥
जोड़ी जुड़ै न तोड़ी तूटै जब लगु होइ बिनासी ।
का को ठाकुरु का को सेवकु को काहू कै जासी ॥३॥
कहु कबीर लिव लागि रही है जहा बसे दिन राती ।
उआ का मरमु ओही परु जानै ओहु तउ सदा अबिनासी ॥४॥

२८

सुरति सिम्रित दुइ कंनी मुंदा परमिति बाहरि खिंथा ।
सुंन गुफा महि आसणु बैसणु कलप बिबरजित पंथा ॥
मेरे राजन मै बैरागी जोगी ।
मरत न सोग बिओगी ॥१॥
खंड ब्रहमंड महि सिंङी मेरा बटूआ सभु जगु भसमाधारी ।
ताड़ी लागी त्रिपलु पलटीऐ छूटै होइ पसारी ॥२॥
मनु पवनु दुइ तूंबा करीहै जुग जुग सारद साजी ।
थिरु भई तंती तूटसि नाही अनहद किंगुरी बाजी ॥३॥
सुनि मन मगन भए है पूरे माइआ डोल न लागी ।
कहु कबीर ता कउ पुनरपि जनमु नही खेलि गइओ बैरागी ॥४॥

२९

गज नव गज दस गज इकीस पुरीआ एक तनाई ।
साठ सूत नव खंड बहतरि पाटु लगो अधिकाई ॥
गई बुनावन माहो ।
घर छोड़िऐ जाइ जुलाहो ॥१॥
गजी न मिनीऐ तोलि न तुलीऐ पाचनु सेर अढाई ।
जौ करि पाचनु बेगि त पावै झगरु करै घर हाई ॥२॥
दिनकी बैठ खसम की बरकस इह बेला कत आई ।
छूटे कूंडे भीगै पूरीआ चलिओ जुलाहो रीसाई ॥३॥
छोछी नली तंतु नही निकसै न तर रही उरझाई ।
छोडि पसारु ईहा रहु बपुरी कहु कबीर समझाई ॥४॥

३०

एक जोति एका मिली किंबा होइमहोइ ।
जितु घटि नामु न ऊपजै फूटि मरै जनु सोइ ।
सावल सुन्दर रामईआ ।
मेरा मनु लागा तोही ॥१॥
साधु मिलै सिधि पाईऐ कि एहु जोगु कि भोग ।
दुहु मिलि कारजु उपजै राम नाम संजोगु ॥२॥
लोगु जानै इहु गीतु है इहु तउ ब्रहम बीचार ।
जिउ कासी उपदेसु होइ मानस मरती बार ॥३॥
कोई गावै को सुणै हरि नामा चितु लाइ ।
कहु कबीर संसा नही अंति परमगति पाइ ॥४॥

३१

जेते जतन करत ते डूबे भव सागरु नही तारिओ रे ।
करम धरम करते बहु संजम अहं बुधि मनु जारिओ रे ॥

सास ग्रास को दातो ठाकुरु सो किउ मनहु बिसारिओ रे।
हीरा लाल अमोलु जनमु है कउडी बदलै हारिओ रे ॥१॥
त्रिसना त्रिखा भूख भ्रमि लागी हिरदै नाहि बीचारिओ रे।
उनमन मान हिरिओ मन माही गुर का सबदु न धारिओ रे ॥२॥
सुआद लुभत इंद्री रस प्रेरिओ मद रस लैत बिकारिओ रे
करम भाग संतन संगाने कासट लोह उधारिओ रे ॥३॥
धावत जोनि जनम भ्रमि थाके अब दुख करि हम हारिओ रे
कहि कबीर गुर मिलत महा रसु प्रेम भगति निसतारिओ रे।

३२

× कालबूत की हसतनी मन बउरा रे चलतु रचिओ जगदीस।
काम सुआइ गज बसि परे मन बउरा रे अंकसु सहिओ सीस।
बिखै बाचु हरि राचु समझु मन बउरा रे।
निरभै होइ न हरि भजे मन बउरा रे गहिओ न राम जहाजु ॥१॥
मरकट मुसटी अनाज की मन बउरा रे लीनी हाथु पसारि।
छूटन को सहसा परिआ मन बउरा नाचिओ घर घर बारि ॥२॥
जिउ नलनी सूअटा गहिओ मन बउरा रे माया इहु बिउहारु।
जैसा रंगु कसुंभ का मन बउरा रे तिउ पसरिओ पासारु ॥३॥
नावन कउ तीरथ घने मन बउरा रे पूजन कउ बहु देव।
कहु कबीर छूटनु नही मन बउरा रे छूटनु छूटनु हरि की सेव ॥४॥

३३

अगनि न दहै पवनु नही मगनै तसकरु नेरि न आवै।
राम नाम धनु कारि संचउनी सो धनु कतही न जावै ॥
हमरा धनु माधउ गोबिद धरणी धरु इहै सार धनु कहीऐ।
जो सुखु प्रभ गोबिंदु की सेवा सो सुखु राजि न लहीऐ ॥१॥
इसु धन कीरणि सिव सनकादिक खोजत भए उदासी।
मनि मुकुंदु जिहवा नाराइनु परै न जम की फासी ॥२॥

निज धनु गिआनु भगति गुर दीनी तासु सुमति मनु लागा ।
जलत अंभ थंभि मनु धावत भरम बंधन भउ भागा ॥३॥
कहै कबीरु मदन के माते हिरदै देखु बीचारी ।
तुम घरि लाख कोटि अस्व हसती हम घरि एकु मुरारी ॥४॥

३४

जिउ कपि के कर मुसटि चनन की लुबधि न तिआगु दइओ ।
जो जो करम कीए लालच सिउ ते फिरि गरहि परिओ ॥
भगति बिनु बिरथे जनमु गइओ ।
साध संगति भगवान भजन बिनु कही न सचु रहिओ ॥१॥
जिउ उदिआन कुसम परफुलित किनहि न घ्राउ लइओ ।
तैसे भ्रमत अनेक जोनि महि फिरि फिरि काल हइओ ॥२॥
इआ धन जोबन अरु सुत दारा पेखन कउ जु दइओ ।
तिन ही माहि अटकि जो उरझे इंद्री प्रेरि लइओ ॥३॥
अउध अनल तनु तिन को मंदरु चहु दिस ठाटु ठइओ ।
कहि कबीर भै सागर तरन कउ मै सतिगुर ओट लइओ ॥४॥

३५

पानी मैला माटी गोरी ।
इस माटी की पुतरी जोरी ॥
मै नाही कछु आहि न मोरा ।
तनु धनु सभु रसु गोबिद तोरा ॥१॥
इस माटी महि पवनु समाइआ ।
झूठा परपंचु जोरी चलाइआ ॥२॥
किनहू लाख पांच की जोरी ।
अंत की बार गगरीआ फोरी ॥३॥
कहि कबीर इक नीव उसारी ।
खिन महि बिनसि जाइ अहंकारी ॥४॥

३६

राम जपउ जीअ ऐसे ऐसे ।
ध्रू प्रहिलाद जपिओ हरि जैसे ।।
दीन दइआल भरोसे तेरे ।
सभु परवारु चड़ाइआ बेड़े ।।१।।
जा तिसु भावै ता हुकमु मनावै ।
इस बेड़े कउ पारि लघावै ।।२।।
गुर परसादि ऐसी बुधि समानी ।
चूकि गई फिरि आवनि जानी ।।३।।
कहु कबीर भजु सारिगपानी ।
उरवारि पारि सभ एको दानी ।।४।।

३७

जोनि छाड़ि जउ जग महि आइओ ।
लागत पवन खसमु बिसराइओ ।।
जीअरा हरि के गुना गाउ ।।१।।
गरभ जोनि महि उरध तपु करता ।
तउ जठर अगनि महि रहता ।।२।।
लख चउरासीह जोनि भ्रमि आइओ ।
अब के छुटके ठउर न ठाइओ ।।३।।
कहु कबीर भजु सारिगपानी ।
आवत दीसै जात न जानी ।।४।।

३८

सुरगबासु न बाछीऐ डरीऐ न नरकि निवासु ।
होना है सो होइ है मनहि न कीजै आस ।।
रमईआ गुन गाईऐ जा ते पाईऐ परम निधानु ।।१।।

किआ जपु किआ तपु संजमो किआ वरतु किआ इसनानु ।
जब लगु जुगति न जानीऐ भाउ भगति भगवान ॥२॥
संपै देखि न हरखीऐ बिपति देखि न रोइ ।
जिउ संपै तिउ बिपति है बिधने रचिआ सो होइ ॥३॥
कहि कबीर अब जानिआ संतन रिदै मझारि ।
सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि ॥४॥

३९

रे मन तेरो कोइ नहीं खिंचि लेइ जिनि भारु ।
बिरख बसेरो पंखि को तैसो इहु संसारु ॥
राम रसु पीआ रे जिह रस बिसरि गए रस अउर ॥१॥
अउर मुए किआ रोईऐ जउ आपा थिरु न रहाइ ।
जो उपजै सो बिनसि है दुखु करि रोवै बलाइ ॥२॥
जह की उपजी तह रची पीवत मरदन लाग ।
कहि कबीर चिति चेतिआ राम सिमरि बैराग ॥३॥

४०

पंथु निहारै कामनी लोचन भरी ले उसासा ।
उर न भीजै पगु ना खिसै हरि दरसन की आसा ॥
उडहु न कागा कारे ।
बेगि मिलीजै अपुने राम पिआरे ॥१॥
कहि कबीर जीवन पद कारनि हरि की भगति करीजै ।
एकु आधारु नामु नाराइन रसना रामु रवीजै ॥२॥

४१

आस पास घन तुरसी का बिरवा माझ बनारसि गाऊ रे ।
उआ का सरूपु देखि मोही गुआरनि मो कउ छोडि न आउ न जाहू रे ॥
तोहि चरन मनु लागो सारिंगधर सो मिलै जो बड भागो रे ॥१॥

बिंद्राबन मन हरन मनोहर क्रिसन चरावत गाऊ रे ।
जा का ठाकुरु तुही सारिंगधर मोहि कबीरा नाऊ रे ॥२॥

४२

बिपल बसत्र केते है पहिरे किआ बन मधे बासा ।
कहा भइआ नरदेवा धोखे किआ जलि बोरिओ गिआता ॥
जीअ रे जाहिगा मैं जानां । अबिगतु समझु इआना ।
जत जत देखउ बहुरि न पेखउ संगि माइआ लपटाना ॥१॥
गिआनी धिआनी बहु उपदेसी इहु जगु सगलो धंधा ।
कहि कबीर इक राम नाम बिनु इआ जगु माइआ अंधा ॥२॥

४३

मन रे छाडहु भरमु प्रगटु होइ नाचहु इआ माइआ के डांडे ।
सुरु की सनमुख रन ते डरपै सती कि सांचे भांडे ॥
डगमग छाडि रे मन बउरा ।
अब तउ जरे मरे सिधि पाईऐ लीनो हाथि संधउरा ॥१॥
काम क्रोध माइआ के लीने इआ बिधि जगतु बिगूता ।
कहि कबीर राजा राम न छोडउ सगल ऊच ते ऊचा ॥२॥

४४

फुरमानु तेरा सिरै ऊपरि फिरि न करत बीचार ।
तुही दरीआ तुही करीआ तुझै ते निसतार ॥
बंदे बंदगी इकतीआर ।
साहिबु रोसु धरउ कि पिआरु ॥१॥
नामु तेरा आधारु मेरा जिउ फूलु जई है नारि ।
कहि कबीर गुलामु घर का जीआइ भावै मारि ॥२॥

४५

लख चउरासीं जीअ जोनि महि भ्रमत नंदु बहु थाको रे ।
भगति हेति अवतारु लीओ है भाग बडो बपुरा को रे ॥

तुम जु कहत हउ नंद को नंदनु नंद सु नंदनु का को रे ।
धरनि अकासु दसो दिस नाही तब इहु नंदु कहा थो रे ॥१॥
संकटि नही परै जोनि नही आवै नामु निरंजन जा को रे ।
कबीर को सुआमी ऐसो ठाकुरु जा कै माई न बापो रे ॥२॥

४६

निंदउ निंदउ मो कउ लोगु निंदउ ।
निंदा जन कउ खरी पिआरी ॥
निंदा बापु निंदा महतारी ।
निंदा होइ त बैकुंठि जाईऐ ।
नामु पदारथु मनहि बसाईऐ ॥
रिदै सुध जउ निंदा होइ ।
हमरे कपरे निंदकु धोइ ॥१॥
निंदा करै सु हमारा मीतु ।
निंदुकु माहि हमारा चीतु ॥
निंदक सो जो निंदा होरै ।
हमरा जीवनु निंदकु लोरै ॥२॥
निंदा हमरी प्रेम पिआरु ।
निंदा हमरा करै उधारु ॥
जन कबीर कउ निंदा सारु ।
निंदकु डूबा हम उतरे पारि ॥३॥

रागु आसा

१

गुर चरण लागि हम बिनवता पूछत कह जीउ पाइआ ।
कवन काजि जगु उपजै बिनसै कहहु मोहि समझाइआ ॥
देव करहु दइआ मोहि मारगि लावहु जितु भै बंधन तूटै ।
जनम मरन दुख फेड़ करम सुख जीअ जनम ते छूटै ॥१॥
माइआ फास बंध नही फारै अरु मन सुंनि न लूके ।
आपा पदु निरबाणु न चीन्हिआ इन बिधि अभिउ न चूके ॥२॥
कही न उपजै उपजी जाणै भाव अभाव बिहूणा ।
उदे असत की मन बुधि नासी तउ सदा सहजि लिव लीणा ॥३॥
जिउ प्रतिबिंबु बिंब कउ मिली है उदक कुंभु बिगराना ।
कहु कबीर ऐसा गुण भ्रमु भागा तउ मनु सुंनि समाना ॥४॥

२

गज साढे तै तै धोतीआ तिहरे पाइनि तग । बनारस के साधुओं की आलोचना
गली जिन्हा जपमालीआ लोटे हथि निबग ॥
ओइ हरि के संत न आखीअहि बानारसि के ठग ॥
ऐसे संत न मो कउ भावहि ।
डाला सिउ पेडा गटकावहि ॥१॥
बासन मांजि चरावहि ऊपरि काठी धोइ जलावहि ।
बसुधा खोदि करहि दुइ चूल्हे सारे माणस खावहि ॥२॥
ओइ पापी सदा फिरहि अपराधी मुखहु अपरस कहावहि ।
सदा सदा फिरहि अभिमानी सगल कुटंब डुबावहि ॥३॥
जितु को लाइआ तित ही लागा तैसे करम कमावै ।
कहु कबीर जिसु सतिगुरु भेटै पुनरपि जनमि न आवै ॥४॥

३

बापि दिलासा मेरो कीन्हा ।
सेज सुखाली मुखि अंम्रितु दीन्हा ॥
तिसु बाप कउ किउ मनहु विसारी ।
आगै गइआ न बाजी हारी ॥
मुई मेरी माई हउ खरा सुखाला ।
पहिरउ नही दगली लगै न पाला ॥१॥
बलि तिसु बापै जिनि हउ जाइआ ।
पंचा ते मेरा संगु चुकाइआ ॥
पंच मारि पावा तलि दीने ।
हरि सिमरनि मेरा मनु तनु भीने ॥२॥
पिता हमारो वड गोसाई ।
तिसु पिता पहि हउ किउकरि जाई ॥
सतिगुर मिले त मारगु दिखाइआ ।
जगत पिता मेरै मनि भाइआ ॥३॥
हउ पूतु तेरा तूं बापु मेरा ।
एकै ठाहर दुहा बसेरा ॥
कहु कबीर जनि एको बूझिआ ।
गुर प्रसादि मै सभु किछु सूझिआ ॥४॥

४

इकतु पतरि भरि उरकट कुरकट इकतु पतरि भरि पानी ।
आसि पासि पंच जोगीआ बैठे बीचि नकटदे रानी ॥
नकटी की ठनगनु बाडा डूं । किनहि बिबेकी काटी तूं ॥१॥
सगल माहि नकटी का वासा सगल मारि अउहेरी ।
सगलिआ की हउ बहिन भानजी जिनहि बरी तिसु चेरी ॥२॥

हमरो भरता बडो बिबेकी आपे संतु कहावै।
ओहु हमारै माथै काइमु अउरु हमारै निकटि न आवै ॥३॥
नाकहु काटी कानहु काटी काटि कूटि कै डारी।
कहु कबीर संतन की बैरनि तीनि लोक की पिआरी ॥४॥

५

जंगी जती तपी संनिआसी बहु तीरथ भ्रमंना।
लुंजित मुंजित मोनि जटाधर अंति तऊ मरना ॥
ता ते सेवीअले रामना।
रसना राम नाम हितु जा कै कहा करै जमना ॥१॥
आगम निरगम जोतिक जानहि बहु बहु बिआकरना।
तंत्र मंत्र सभ अउखध जानहि अंति तऊ मरना ॥२॥
राज भोग अरु छत्र सिघासन बहु सुंदरि रमना।
पान कपूर सुबासक चंदन अंति तऊ मरना ॥३॥
बेद पुरान सिम्रित सभ खोजे कहू न उबरना।
कहु कबीर इउ रामहि जंपउ मेटि जनम मरना ॥४॥

६

फीलु रबाबी बलदु पखावज कऊआ ताल बजावै।
पहिरि चोलना गदहा नाचै भैसा भगति करावै ॥
राजा राम ककरीआ बरे पकाए। किनै बूझन हारै खाए ॥१॥
बैठि सिंघु घरि पान लगावै घीस गलउरे लिआवै।
घरि घरि मुसरी मंगलु गावहि कछूआ संखु बजावै ॥२॥
बंस को पूतु बीआहन चलिआ सुइने मंडप छाए।
रूप कंनिआ सुंदरि बेधी ससै सिंघ गुन गाए ॥३॥
कहत कबीर सुनहु रे संतहु कीटी परबतु खाइआ।
कछूआ कहै अंगार भि लोरउ लूकी सबदु सुनाइआ ॥४

७

बटूआ एकु बहतरि आधारी एको जिसहि दुआरा ।
नवै खंड की प्रिथमी मागै सो जोगी जगि सारा ॥
ऐसा जोगी नउ निधि पावै । तलका ब्रहमु ले गगनि चरावै॥१॥
खिथा गिआन धिआन करि सूई सबदु तागा मथि घालै ।
पंच ततु की करि मिरगाणी गुर कै मारगि चालै ॥२॥
दइआ फाहुरी काइआ करि धूइ द्रिसटि की अगनि जलावै ।
तिस का भाउ लए रिद अंतरि चहु जुग ताड़ी लावै ॥३॥
सभ जोगतण राम नामु है जिसका पिंडु पराना ।
कहु कबीर जे किरपा धारै देइ सचा नीसाना ॥४॥

८

हिंदू तुरक कहा ते आए किनि एह राह चलाई ।
दिल महि सोचि बिचार कवादे भिसत दोजक किनि पाई॥
काजी तै कवन कतेब बखानी ।
पढ़त गुनत ऐसे सभ मारे किनहूँ खबरि न जानी ॥१॥
सकति सनेहु करि सुंनति करीऐ मै न बदउगा भाई ।
जउ रे खुदाइ मोहि तुरकु करैगा आपन ही कटि जाई ॥२॥
सुंनति कीए तुरकु जे होइगा अउरत का किआ करीऐ ।
अरध सरीरी नारि न छोडै तावे हिंदू हई रहीऐ ॥३॥
छाडि कतेब राम भजु बउरे जुलम करत है भारी ।
कबीरै पकरी टेक राम की तुरक रहे पचि हारी ॥४॥

९

पाती तोरै मालिनी पाती जीउ ।
जिसु पाहन कउ पाती तोरै सो पाहन निरजीउ ॥
भूली मालनी है एउ । सतिगुरु जागता है देउ ॥१॥

ब्रहमु पाती बिसनु डारी फूल संकर देउ ।
तीनि देव प्रतखि तोरहि करहि किस की सेउ ॥२॥
पाखान गढि कै मूरति कीन्ही दे कै छाती पाउ ।
जे एह मूरति साची है तउ गड़णहारे खाउ ॥३॥
भातु पहिति अरु लापसी करकरा कासारु ।
भोगनहारे भोगिआ इसु मूरति के मुख छारु ॥४॥
मालिनि भूली जगु भुलाना हम भुलाने नाहि ।
कहु कबीर हम राम राखे क्रिपा करि हरि राइ ॥५॥

१०

बारह बरस बालपन बीते बीस बरस कछु तपु न कीओ ।
तीस बरस कछु देव न पूजा फिरि पछुताना बिरधि भइओ ॥
मेरी मेरी करते जनमु गइओ ।
साइर सोखि भुजं बलइअं ॥१॥
सूके सरवरि पालि बंधावै लूखे खेति हथ वारि करै ।
आइओ चोरु तुरंतह ले गइओ मेरी राखत मुगधु फिरै ॥२॥
चरन सीसु कर कंपन लागे नैनी नीरु असार बहै ।
जिहवा बचनु सुधु नही निकसै तब रे धरम की आस करै॥३॥
हरि जीउ क्रिपा करै लिव लावै लाहा हरि हरि नामु लीओ
गुर परसादी हरि धनु पाइओ अंते चल दिआ नालि चलिओ ॥४॥
कहत कबीर सुनहु रे संतहु अनु धनु कछूऐ लै न गइओ ।
आई तलब गोपालराइ की माइआ मंदर छोडि चलिओ॥५॥

११

काहू दीन्हे पाट पटंबर काहू पलघ निवारा ।
काहू गरी गोदरी नाही काहू खान परारा ॥
अहिरख वादु न कीजै रे मन ।
सुक्रितु करि करि लीजै रे मन ॥१॥

कुम्हारै एक जु माटी गूंधी बहु बिधि बानी लाई ।
काहू महि मोती मुकताहल काहू बिआधि लगाई ॥२॥
सूमहि धनु राखन कउ दीआ मुगधु कहै धनु मेरा ।
जम का डंडु मूंड महि लागै खिन महि करै निबेरा ॥३॥
हरि जनु ऊतमु भगतु सदावै आगिआ मनि सुखु पाई ।
जो तिसु भावै सति करि मानै भाणा मंनि वसाई ॥४
कहै कबीरु सुनहु रे संतहु मेरी मेरी झूठी ।
चिरगट फारि चटारा लै गइओ तरी तागरी छूटी ॥५॥

१२

हम मसकीन खुदाई बंदे तुम राजसु मनि भावै ।
अलह अवलि दीन को साहिबु जोरु नही फुरमावै ॥
काजी बोलिआ बनि नही आवै ॥१॥
रोजा धरै निवाज गुजारै कलमा भिसति न होई ।
सतरि काबा घट ही भीतरि जे करि जानै कोई ॥२॥
निवाज सोई जो निआउ बिचारै कलमा अकलहि जानै ।
पाचहु मुसि मुसला बिछावै तब तउ दीनु पछानै ॥३॥
खसमु पछानि तरस करि जीअ महि मारि मणी करि फीकी ।
आपु जनाइ अवर कउ जानै तब होइ भिसत सरीकी ॥४॥
माटी एक भेख धरि नाना ता महि ब्रहमु पछाना ॥
कहै कबीरा भिसति छोडिकरि दोजक सिउ मनु माना ॥५॥

१३

गगन नगरि इक बूंद न बरखै नादु कहा जु समाना ।
पारब्रहम परमेसुर माधो परम हंसु ले सिधाना ॥
बाबा बोलते ते कहा गए । देही के संगि रहते ।
सुरति माहि जो निरते करते कथा बारता कहते ॥१॥

बजावन हारो कहा गइओ जिनि इहु मंदरु कीना ।
साखी सबदु सुरति नही उपजै खिंचि तेजु सभु लीना ॥२॥
स्रवनन विकल भए संग तेरे इंद्री का बलु थाका ।
चरन रहे कर ढरकि परे है मुखहु न निकसै बाता ॥३॥
थाके पंच दूत सभ तसकर आप आपणै भ्रमते ।
थाका मनु कुंचर उरु थाका तेजु सूतु धरि रमते ॥४॥
मिरतक भए दसै बंक छूटे मित्र भाई सभ छोरे ।
कहत कबीरा जो हरि धिआवै जीवत बंधन तोरे ॥५॥

१४

सरपनी ते ऊपरि नही बलीआ ।
जिनि ब्रहमा बिसनु महादेउ छलीआ ॥
मारु मारु स्रपनी निरमल जलि पैठी ।
जिनि त्रिभवणु डसीअले गुर प्रसादि डीठी ॥१॥
स्रपनी स्रपनी किआ कहहु भाई ।
जिनि साचु पछानिआ तिनि स्रपनी खाई ॥२॥
स्रपनी ते आन छूछ नही अवरा ।
स्रपनी जीती कहा करै जमरा ॥३॥
इह स्रपनी ता की कीती होई ।
बलु अबलु किआ इस ते होई ॥४॥
इह बसती ता बसत सरीरा ।
गुर प्रसादि सहजि तरे कबीरा ॥५॥

१५

कहा सुआन कउ सिंम्रिति सुनाए ।
कहा साकत परि हरि गुन गाए ॥
रामि राम राम रमे रमि रहीऐ ।
साकत सिउ भूलि नही कहीऐ ॥१॥

कऊआ कहा कपूर चराए।
कह बिसीअर कउ दूधु पीआए ॥२॥
सति संगति मिलि बिबेक बुधि होई।
पारसु परसि लोहा कंचनु सोई ॥३॥
साकतु सुआनु सभु करे कहाइआ।
जो धुरि लिखिआ सो करम कमाइआ ॥४॥
अंम्रितु लै लै नीमु सिचाई।
कहत कबीर उआ को सहजु न जाई ॥

१६

लंका सा कोटु संमुद सी खाई।
तिह रावन घर खबरि न पाई ॥
किआ मागउ किछु थिरु न रहाई।
देखत नैन चलिओ जग जाई ॥१॥
इकु लखु पूत सवा लखु नाती।
तिह रावन घर दीआ न बाती ॥२॥
चंदु सूरजु जा के तपत रसोई।
बैसंतरु जा के कपरे धोई ॥३॥
गुरमति रामै नामि वसाई।
असथिरु रहै न कतहूँ जाई ॥४॥
कहत कबीर सुनहु रे लोई।
राम नाम बिनु मुकति न होई ॥५॥

१७

पहिला पूतु पिछै री माई।
गुरु लागो चेले की पाई ॥
एकु अचंभउ सुनहु तुम भाई।
देखत सिंघु चरावत गाई ॥१॥

जल की मछुली तरवरि बिआई ।
देखत कुतरा लै गई बिलाई ॥२॥
तलै रे बैसा ऊपरि सूला ।
तिस कै पेडि लगे फल फूला ॥३॥
घोरै चरि भैस चरावन जाई ।
बाहरि बैलु गोनि घरि आई ॥४॥
कहत कबीर जु इस पद बूझै ।
राम रमत तिसु सभु किछु सूझै ॥५॥

१७

बिंदु ते जिनि पिंडु कीआ अगनि कुंड रहाइआ ।
दस मास माता उदरि राखिआ बहुरि लागी माइआ ॥
प्रानी काहे कउ लोभि लागे रतन जनमु खोइआ ।
पूरब जनमि करम भूमि बीजु नाही बोइआ ॥१॥
बारिक ते बिरधि भइआ होना सो होइआ ।
जा जमु आइ झोट पकरै तबहि काहे रोइआ ॥२॥
जीवनै की आस करहि जमु निहारै सासा ।
बाजीगरी संसारु कबीरा चेति ढालि पासा ॥३॥

१८

तनु रैनी मनु पुनरपि करिहउ पाचउ तत बराती ।
राम राइ सिउ भावरि लैहउ आतम तिह रंग राती ॥
गाउ गाउ री दुलहनी मंगल चारा ।
मेरे ग्रिह आए राजा राम भतारा ॥१॥
नाभि कमल महि बेदी रचिले ब्रहम गिआन उचारा ।
राम राइ सो दूलहु पाइओ अस बड भाग हमारा ॥२॥
सुरि नर मुनि जन कउतक आए कोटि तेतीसउ जानां ।
कहि कबीर मोहि बिआहि चले है पुरख एक भगवाना ॥३॥

रागु सोरठि

१

बुत पूजि पूजि हिंदू मूए तुरक मूए सिरु नाई।
ओइ ले जारे ओइले गाडे तेरी गति दुहू न पाई॥
मन रे संसारु अंध गहेरा।
चहु दिस पसरिओ है जम जेवरा ॥१॥
कवित पड़े पड़ि कविता मूए कपड़ केदारै जाई।
जटा धारि धारि जोगी मूए तेरी गति इनहि न पाई ॥२॥
दरबु संचि संचि राजे मूए गडि ले कंचन भारी।
बेद पड़े पड़ि पंडित मूए रूप देखि देखि नारी ॥३॥
राम नाम बिनु सभै बिगूते देखहु निरखि सरीरा।
हरि के नाम बिनु किनि गति पाई कहि उपदेसु कबीरा ॥४॥

२

जब जरीऐ तब होइ भसम तनु रहै किरम दल खाई।
काची गागरि नीरु परतु है इआ तन की इहै बडाई।
काहे भाईआ फिरतौ फूलिआ फूलिआ।
जब दस मास उरध मुख रहता सो दिनु कैसे भूलिआ ॥१॥
जिउ मधु माखी तिउ सठोरि रसु जोरि जोरि धनु कीआ।
मरती बार लेहु लेहु करीऐ भूतु रहन किउ दीआ ॥२॥
देहुरी लउ बरी नारि संग भई आगै सजन सुहेला।
मरघट लउ सभु लोगु कुटंबु भइओ आगै हंसु अकेला ॥३॥
कहतु कबीर सुनहु रे प्रानी परे काल ग्रस कूआ।
झूठी माइआ आपु बंधाइआ जिउ नलनी भ्रमि सूआ ॥४॥

३

बेद पुरान सभै मत सुनि कै करी करम की आसा ।
काल ग्रसत सभ लोग सिआने उठि पंडत पै चले निरासा ॥
मन रे सरिओ न एकै काजा ।
भजिओ न रघुपति राजा ॥१॥
बनखंड जाइ जोगु तपु कीनो कंद मूलु चुनि खाइआ ।
नादी बेदी सबदी मोनी जम के पटै लिखाइआ ॥२॥
भगति नारदी रिदै न आई काछि कूछि तनु दीना ।
राग रागिनी डिंभ होइ बैठा उनि हरि पहि किआ लीना ॥३॥
परिओ कालु सभै जग ऊपर माहि लिखे भ्रम गिआनी ।
कहु कबीर जन भए खालासे प्रेम भगति जिह जानी ॥४॥

———

रागु तिलंग

१

बेद कतेब इफतरा भाई दिल का फिकरु न जाइ ।
टुकु दमु करारी जउ करहु हाजिर हजूर खुदाइ ॥
बंदे खोजु दिल हर रोजा फिरु परेसानी माहि ।
इह जु दुनीआ सिहरु मेला दसतगीरी नाहि ॥१॥
दरोगु पड़ि पड़ि खुसी होइ बेखबर बादु बकाहि ।
हकु सचु खालकु खलक मिआने सिआम मूरति नाहि ॥२॥
असमान म्यिाने लहंग दरीआ गुसल करदन बूद ।
करि फकरु दाइम लाइ चसमे जह तहा मउजूद ॥३॥
अलाह पाकं पाक है सक करउ जे दूसर होइ ।
कबीर करमु करीम का उहु करै जानै सोइ ॥४॥

२

अमलु सिरानो लेखा देना ।
आए कठिन दूत जम लेना ॥
किआ तै खटिआ कहा गवाइआ ।
चलहु सिताब दीबानि बुलाइआ ॥
चलु दरहालु दीवानि बुलाइआ ।
हरि फुरमानु दरगह का आइआ ॥१॥
करउ अरदासि गाव किछु बाकी ।
लेउ निबेर आजु की राती ॥
किछु भी खरच तुम्हारा सारउ ।
सुबह निवाज सराइ गुजारहु ॥२॥
साध संगि जाउ हरि रंगु लागा ।
धनु धनु सो जनु पुरखु सभागा ॥
ईत ऊत जन सदा सुहेले ।
जनमु पदारथु जीति अमोले ॥३॥

जागतु सोइआ जनमु गवाइआ ।
मालु धनु जोरिआ भइआ पराइआ ॥
कहु कबीर तेई नर भूले ।
खसमु बिसारि माटी संगि रूले ॥४॥

३

थाके नैन स्रवन सुनि थाके थाकी सुंदरि काइआ ।
जरा हाक दी सभ मति थाकी एक न थाकसि माइआ ॥
बावरे तै गिआन बीचारु न पाइआ ।
बिरथा जनमु गवाइआ ॥१॥
तब लगु प्रानी तिसै सरेवहु जब लगु घट महि सासा ।
जे घटु जाइ त भाउ न जासी हरि के चरन निवासा ॥२॥
जिस कउ सबदु बसावै अंतरि चूकै तिसहि पिआसा ।
हुकमै बूझै चउपड़ि खेलै मनु जिणि ढाले पासा ॥३॥
जो जन जानि भजहि अबिगत कउ तिन का कछू न नासा ।
कहु कबीर ते जन कबहु न हारहि ढालि जु जानहि पासा ॥४॥

४

एकु कोटु पंच सिकदारा पंचे मागहि हाला ।
जिमी नाही मै किसी की बोइ ऐसा देनु दुखाला ॥
हरि के लोगा मो कउ नीति डसै पटवारी ।
ऊपरि भुजा करि मै गुर पहि पुकारिआ तिनि हउ लीआ उबारी ॥१॥
नउ डाडी दस मुंसफ धावहि रईअति बसन न देही ।
डोरी पूरी मापहि नाही बहु बिसटाला लेही ॥२॥
बहतरि घरि इकु पुरखु समाइआ उनि दीआ नामु लिखाई ।
धरमराय का दफतरु सोधिआ बाकी रिजम न काई ॥३॥
संता कउ मति कोई निंदहु संत रामु है एको ।
कहु कबीर मै सो गुरु पाइआ जा का नाउ बिबेको ॥४॥

रागु गौंड़

१

संतु मिलै किछु सुनीऐ कहीऐ ।
मिलै असंतु मसटि करि रहीऐ ।
बाबा बोलना किआ कहीऐ ।
जैसे राम नाम रवि रहीऐ ॥१॥
संतन सिउ बोले उपकारी ।
मूरख सिउ बोले झख मारी ॥२॥
बोलत बोलत बढहि बिकारा ।
बिनु बोले किआ करहि बीचारा ॥३॥
कहु कबीर छूछा घटु बोलै ।
भरिआ होइ सु कबहु न डोलै ॥४॥

२

नरू मरै नरु कामि न आवै ।
पसू मरै दस काज सवारै ॥
अपने करम की गति मै किआ जानउ ।
मै किआ जानउ बाबा रे ॥१॥
हाड जले जैसे लकरी का तूला ।
केस जले जैसे घास का पूला ॥२॥
कहु कबीर तब ही नरु जागै ।
जम का डंडु मूंड महि लागै ॥३॥

३

आकासि गगनु पातालि गगनु है चहु दिसि गगनु रहाइले ।
आनद मूलु सदा पुरखोतमु घटु बिनसै गगनु न जाइले ॥

मोहि बैरागु भइओ ।
इहु जीउ आइ कहा गइओ ॥१॥
पंज ततु मिलि काइआ कीनी ततु कहा ते कीनु रे ।
करम बध तुम जीउ कहत हौ करमहि किनि जीउ दीनु रे ॥२॥
हरि महि तनु है तन महि हरि है सरब निरंतरि सोइ रे ।
कहि कबीर राम रामु न छोडउ सहजे होइ सु होइ रे ॥३॥

४

भुजा बांधि भिला करि डारिओ ।
हसती क्रोपि मूंड महि मारिओ ॥
हसति भागि कै चीसा मारै ।
इआ मूरति कै हउ बलिहारै ॥
आहि मेरे ठाकुर तुमरा जोरु ।
काजी बकिबो हसती तोरु ॥१॥
रे महावत तुझु डारउ काटि ।
इसहि तुरावहु घालहु साटि ॥
हसति न तोरै धरै धिआनु ।
वाकै रिदै बसै भगवानु ॥२॥
किआ अपराधु संत है कीन्हा ।
बांधि पोटि कुंजर कउ दीना ॥
कुंजरु पोट लै लै नमसकारै ।
बूझी नहीं काजी अंधिआरै ॥३॥
तीनि बार पतीआ भरि लीना ।
मन कठोरु अजहू न पतीना ॥
कहि कबीर हमरा गोबिंदु ।
चउथे पद महि जन की जिंदु ॥४॥

५

ना इहु मानसु ना इहु देहु ।
ना इहु जती कहावै सेउ ॥
ना इहु जोगी ना अवधूता ।
ना इसु माइ न काहू पूता ॥
इआ मंदर महि कौन बसाई ।
ता का अंतु न कोऊ पाई ॥१॥
ना इहु गिरही ना ओदासी ।
ना इहु राज न भीख मंगासी ॥
ना इहु पिंडु न रकतू राती ।
ना इहु ब्रहमनु न इहु खाती ॥२॥
ना इहु तपा कहावै सेखु ।
ना इहु जीयै न मरता देखु ॥
इसु मरते कउ जे कोऊ रोवै ।
जो रोवै सोई पति खोवै ॥३॥
गुर प्रसादि मै डगरो पाइआ ।
जीवन मरनु दोऊ मिटवाइआ ॥
कहु कबीर इहु राम की अंसु ।
जस कागद पर मिटै न मंसु ॥४॥

६

तूटे तागे निखुटी पानि ।
दुआर ऊपरि झिलकावहि कान ॥
कूच बिचारे फूए फाल ।
इआ मुंडीआ सिर चढिबो काल ॥
इहु मुंडीआ सगलो द्रबु खोई ।
आवन जात लाक सर होई ॥१॥

तुरी नारि की छोडी बाता।
राम नाम वा का मनु राता॥
लरकी लरिकन खैबो नाहि।
मुंडीआ अनदिनु धापे जाहि ॥२॥
इक दुइ मंदिर इक दुइ बाट।
हम कउ साथरु उन्ह कउ खाट॥
मूंड पलोसि कमर बधि पोथी।
हम कउ चाबनु उन कउ रोटी ॥३॥
मुंडीआ मूंडीया हूए एक।
इह मुंडीआ बूडत की टेक।
सुनि अंधली लोई बे पीर।
इन्हि मुंडीअन भजि सरनि कबीर ॥४॥

———

रागु रामकली

१

काइआ कलालनि लाहनि मेलउ गुर का सबदु गुडु कीनु रे ।
त्रिसना कामु क्रोधु मद मतसर काटि काटि कसु दीनु रे ॥
कोई है रे संतु सहज सुख अंतरि जाकउ जपु तपु देउ दलाली रे ।
एक बूंद भरि तनु मनु देवउ जो मदु देइ कलाली रे ॥१॥
भवन चतुरदस भाठी कीन्ही ब्रहम अगनि तनि जारी रे ।
मुद्रा मदक सहज धुनि लागी सुखमन पोचनहारी रे ॥२॥
तीरथ बरत नेम सुचि संजम रवि ससि गहनै देउ रे ।
सुरति पिआल सुधा रसु अंम्रितु एहु महा रसु पेउ रे ॥३॥
निझर धार चुऐ अति निरमल इह रस मनूआ रातो रे ।
कहि कबीर सगले मद छूछे इहै महा रसु साचो रे ॥४॥

२

गुड़ु करि गिआनु धिआनु करि महूआ
भउ भाठी मन धारा ।
सुखमन नारी सहज समानी पीवै पीवनहारा ॥
अउधू मेरा मनु मतवारा ।
उनमद चढा मदन रसु चाखिआ त्रिभवन भइआ उजिआरा ॥१॥
दुइ पुर जोरि रसाई भाठी पीउ महा रसु भारी ।
कामु क्रोधु दुइ कीए जलेता छूटि गई संसारी ॥२॥
प्रगट प्रगास गिआन गुर गंमित सतिगुर ते सुधि पाई ।
दासु कबीरु तासु मद माता उचकि न कबहू जाई ॥३॥

३

तूं मेरो मेरु परबतु सुआमी ओट गही मै तेरी ।
ना तुम डोलहु ना हम गिरते रखि लीनी हरि मेरी ॥

अब तब जब कब तुही तुही ।
हम तुअ परसाद सुखी सदही ॥
तोरे भरोसे मगहर बसिओ मेरे तन की तपति बुझाई ।
पहिले दरसनु मगहर पाइओ फुनि कासी बसे आई ॥२॥
जैसा मगहरु तैसी कासी हम एकै करि जानी ।
हम निरधन जिउ इहु धनु पाइआ मरते फूटि गुमानी ॥३॥
करै गुमान चुभहि तिसु सूला को काढन कउ नाही ।
अजै सुचोभ कउ बिलल बिलाते नरके घोर पचाही ॥४॥
कवनु नरकु किआ सुरगु बिचारा संतन दोऊ रादे ।
हम काहू की काणि न कढते अपने गुर परसादे ॥५॥
अब तउ जाइ चढे सिंघासनि मिले है सारिंगपानी ।
राम कबीरा एक भए है कोइ न सकै पछानी ॥६॥

४

संता मानउ दूता डानउ इहु कुटवारी मेरी ।
दिवस रैनि तेरे पाउ पलोसउ केस चवर करि फेरि ॥
हम कूकर तेरे दरबारि ।
भउकहि आगै बदनु पसारि ॥१॥
पूरब जनम हम तुम्हरे सेवक अब तउ मिटिआ न जाई ।
तेरे दुआरै धुनि सहज की माथै मेरे दगाई ॥२॥
दागे होहि सु रन महि जूझहि बिनु दागे भगि जाई ।
साधू होइ सु भगति पछानै हरि लए खजानै पाई ॥३॥
कोठरे महि कोठरी परम कोठी बीचारि ।
गुर दीनी बसतु कबीर कउ लेवउ बसतु समारि ॥४॥
कबीर दीई संसार कउ लीनी जिसु मसतकि भागु ।
अंम्रित रसु जिनि पाइआ थिरु ता का सोहागु ॥५॥

५

जिह मुख बेदु गाइत्री निकसै सो किउ ब्रहमनु बिसरु करै ।
जा कै पाइ जगतु सभु लागै सो किउ पंडितु हरि न कहै ॥
काहे मेरे बाम्हन हरि न कहहि ।
रामु न बोलहि पाडे दोजकु भरहि ॥१॥
आपनु ऊच नीच घरि भोजनु हठे करम करि उदरु भरहि ।
चउदस अमावस रचि रचि मांगहि कर दीपकु लै कूप परहिं ॥२॥
तूं ब्रहमनु मै कासी क जुलहा मुहि तोहि बराबरी कैसे कै बनहि ।
हमरे राम नाम कहि उबरे बेदु भरोसे पांडे डूबि मरहि ॥३॥

६

तरवरु एकु अनंत डार साखा पुहप पत्र रस भरीआ ।
इह अंम्रित की बाड़ी है रे तिनि हरि पूरै करीआ ॥
जानी जानी रे राजा राम की कहानी ।
अंतरि जोति राम परगासा गुरमुखि बिरलै जानी ॥१॥
भवरु एकु पुहप रस बीधा बारह ले उरधरिआ ।
सोरह मधे पवन झकोरिआ आकासे फरु फरिआ ॥२॥
सहज सुंनि इकु बिरवा उपजिआ धरती जलहरु सोखिआ ।
कहि कबीर हउ ता का सेवकु जिनि इहु बिरवा देखिआ ॥३॥

७

मुंद्रा मोनि दइआ करि झोली पत्र का करहु बीचारु रे ।
खिंथा इहु तनु सीअउ अपना नामु करउ आधारु रे ॥
ऐसा जोगु कमावहु जोगी ।
जप जप संजमु गुरमुखि भोगी ॥१॥
बुधि बिभूति चढावउ अपुनी सिंगी सुरति मिलाई ।
करि बैरागु फिरउ तनि नगरी मन की किंगुरी बजाई ॥२॥

पंच ततु लै हिरदै राखहु रहै निरालम ताड़ी ।
कहतु कबीरु सुनहु रे संतहु धरमु दइआ करि बाड़ी ॥३॥

८

कवन काज सिरजे जग भीतरि जनमि कवन फलु पाइआ ।
भव निधि तरन तारन चिंतामनि इक निमख न इहु मनु लाइआ ॥
गोबिंद हम ऐसे अपराधी ।
जिनि प्रभि जीउ पिंडु था दीआ तिस की भाउ भगति नही साधी ॥१॥
परधन परतन परती निंदा पर अपबादु न छूटै ।
आवा गवनु होत है फुनि फुनि इहु परसंगु तूटै ॥२॥
जिह घर कथा होत हरि संतन इक निमख न कीनो मै फेरा ।
लंपट चोर दूत मतवारे तिन संगि सदा बसेरा ॥३॥
काम क्रोध माइआ मद मतसर ए संपै मो माही ।
दइआ धरमु अरु गुर की सेवा ए सुपनंतरि नाही ॥४॥
दीन दइआल क्रिपाल दमोदर भगति बछल भै हारी ।
कहत कबीर भीर जन राखहु हरि सेवा करउ तुम्हारी ॥५॥

रागु केदारा

१

उसतति निंदा दोऊ बिबरजित तजहु मानु अभिमाना ।
लोहा कंचनु सम करि जानहि ते मूरति भगवाना ॥
तेरा जनु एकु आधु कोई ।
कामु क्रोधु लोभु मोहु बिबरजित हरि पदु चीन्है सोई ॥१॥
रज गुण तम गुण सत गुण कहीऐ एह तेरी सभ माइआ ।
चउथे पद कउ जो नरु चीन्है तिन ही परम पदु पाइआ ॥२॥
तीरथ बरत नेम सुचि संजम सदा रहै निहकामा ।
त्रिसना अरु माइआ भ्रमु चूका चितवत आतम रामा ॥३॥
जिह मंदरि दीपकु परगासिआ अंधकारु तह नासा ।
निरभउ पूरि रहे भ्रमु भागा कहि कबीर जन दासा ॥४॥

२

किनही बनजिआ कांसी तांबा किन ही लउग सुपारी ।
संतहु बनजिआ नामु गोबिद का ऐसी खेप हमारी ॥
हरि के नाम के बिआपारी ।
हीरा हाथि चड़िआ निरमोलकु छूटि गई संसारी ॥१॥
साचे लाए तउ सच लागे साचे के बिउहारी ।
साची बसतु के भार चलाए पहुचे जाइ भंडारी ॥२॥
आपहि रतन जवाहर मानिक आपै है पासारी ।
आपै दहदिस आप चलावै निहचलु है बिआपारी ॥३॥
मनु करि बैलु सुरति करि पैडा गिआन गोनि भरि डारी ।
कहतु कबीरु सुनहु रे संतहु निबही खेप हमारी ॥४॥

३

री कलवारि गवारि मूढ़ मति उलटो पवनु फिरावउ।
मनु मतवार मेर सर भाठी अंम्रित धार चुआवउ॥
बोलहु भईआ राम की दुहाई।
पीवहु संत सदा मति दुरलभ सहजे पिआस बुझाई॥१॥
भै विचि भाउ भाइ कोउ बूझहि हरि रसु पावै भाई।
जेते घट अंम्रितु सभ ही महि भावै तिसहि पीआई॥२॥
नागरी एकै नउ दरवाजे धावतु बरजि रहाई।
त्रिकुटी छूटै दसवा दरु खूलै ता मनु खीवा भाई॥३॥
अभै पद पूरि ताप तिह नासे कहि कबीर बीचारी।
उबट चलंते इहु मदु पाइआ जैसे खोंद खुमारी॥४॥

४

काम क्रोध त्रिसना के लीने गति नही एकै जानी।
फूटी आखै कछू न सूझै बूडि मूए बिनु पानी॥
चलत कत टेढे टेढे टेढे
असति चरम बिसटा के मूंदे दुरगंध ही के बेढे॥१॥
राम न जपहु कवन भ्रम भूले तुम ते कालु न दूरे।
अनिक जतन करि इहु तनु राखहु रहै अवसथा पूरे॥२॥
आपन कीआ कछू न होवै किआ को करै परानी।
ता तिसु भावै सतिगुरु भेटै एको नामु बखानी॥३॥
बलूआ के घरूआ महि बसते फुलवत देह अइआने।
कहु कबीर जिह रामु न चेतिओ बूडे कहुतु सिआने॥४॥

५

टेढी पाग टेढे चले लागे बीरे खान।
भाउ भगति सिउ काज न कछूऐ मेरो कामु दीवान॥

रामु बिसारिओ है अभिमान ।
कनिक कामनी महा सुंदरी पेखि पेखि सचु मानि ॥१॥
लालच झूठ बिकार महामद इह बिध अउध बिहानि ।
कहि कबीर अंत की बेर आइ लागो कालु निदानि ॥२॥

६

चारि दिन अपनी नउबति चले बजाइ ।
इतनकु खटीआ गठीआ मटीआ संगि न कछु लै जाइ ॥
देहरी बैठी मिहरी रोवै दुआरै लउ संग माइ ।
मरहट लगि सभु लोगु कुटंबु मिलि हंसु इकेला जाइ ॥१॥
वै सुत वै वित वै पुर पाटन बहुरि न देखै आइ ।
कहतु कबीर राम की न सिमरहु जनमु अकारथ जाइ ॥२॥

रागु भैरउ

१

गुर सेवा ते भगति कमाई ।
तब इह मानस देही पाई ॥
इह देही कउ सिमरहि देव ।
सो देही भजु हरि की सेव ॥
भजहु गोबिंद भूलि मत जाहु ।
मानस जनम का एही लाहु ॥१॥
जब लगु जरा रोगु नही आइआ ।
जब लगु कालि ग्रसी नही काइआ ॥
जब लगु बिकल भई नही बानी ।
भजि लेहि रे मन सारिगपानी ॥२॥
अब न भजसि भजसि कब भाई ।
आवै अंतु न भजिआ जाई ॥
जो किछु करहि सोई अब सारु ।
फिरि पछुताहु न पावहु पारु ॥३॥
सो सेवकु जो लाइआ सेव ।
तिन ही पाए निरंजन देव ॥
गुर मिलि ताके खुल्हे कपाट ।
बहुरि न आवै जोनी बाट ॥४॥
इही तेरा अउसरु इह तेरी बार ।
घट भीतरि तू देखु बिचारि ॥
कहत कबीरु जीति कै हारि ।
बहु बिधि कहिओ पुकारि पुकारि ॥५॥

२

सिव की पुरी बसै बुधि सारु ।
तह तुम्ह मिलि कै करहु बिचारु ॥
ईंत ऊत की सोझी परै ।
कउन करम मेरा करि करि मरै ॥
निजपद ऊपरि लागो धिआनु ।
राजा राम नामु मोरा ब्रहम गिआनु ॥१॥
मूल दुआरै बंधिआ बंधु ।
रवि ऊपर गहि राखिआ चंदु ॥
पछम दुआरै सूरजु तपै ।
मेर डंड सिर ऊपरि बसै ॥२॥
पसचम दुआरे की सिल ओड़ ।
तिह सिल ऊपरि खिड़की अउर ॥
खिड़की ऊपरि दसवा दुआरु ।
कहि कबीर ता का अंतु न पारु ॥३॥

३

सो मुलां जो मन सिउ लरै ।
गुर उपदेसि काल सिउ जुरै ॥
काल पुरख का मरदै मानु ।
तिसु मुला कउ सदा सलामु ॥
है हजूरि कत दूरि बतावहु ।
दुंदर बाधहु सुंदर पावहु ॥१॥
काजी सो जु काइआ बीचारै ।
काइआ की अगनि ब्रहमु परजारै ॥
सुपनै बिंदु न देई झरना ।
तिसु काजी कउ जरा न मरना ॥२॥

सो सुरतानु जु दुइ सर तानै ।
बाहरि जाता भीतरि आनै ॥
गगन मंडल महि लसकरु करै ।
सो सुरतानु छत्रु सिरि धरै ॥३॥
जोगी गोरखु गोरखु करै ।
हिंदू राम नाम उचरै ॥
मुसलमान का एकु खुदाइ ।
कबीर का सुआमी रहिआ समाइ ॥४॥

४

जो पाथर कउ कहते देव ।
ता की बिरथा होवै सेव ॥
जो पाथर की पांई पाइ ।
तिस की घाल अजांई जाइ ॥
ठाकुरु हमरा सद बोलंता ।
सरब जीआ कउ प्रभु दानु देता ॥१॥
अंतरि देउ न जानै अंधु ।
भ्रम का मोहिआ पावै फंधु ॥
ना पाथरु बोलै ना किछु देइ ।
फोकट करम निहफल है सेव ॥२॥
जे मिरतक कउ चंदनु चड़ावै ।
उसते कहहु कवन फल पावै ॥
जे मिरतक कउ बिसटा माहि रुलाई ।
तां मिरतक का किआ घटि जाई ॥३॥
कहत कबीर हउ कहउ पुकारि ।
समझि देखु साकत गावार ॥

दूजै भाइ बहुतु घर घाले ।
राम भगत है सदा सुखाले ॥४॥

५

जल महि मीन माइआ के बेधे ।
दीपक पतंग माइआ के छेदे ॥
काम माइआ कुंचर कउ बिआपै ।
भुइअंगम भ्रिंग माइआ महि खापे ॥
माइआ ऐसी मोहनी भाई ।
जेते जीअ तेते डहकाई ॥१॥
पंखी म्रिग माइआ महि राते ।
साकर माखी अधिक संतापे ।
तुरे उसट माइआ महि भेला ।
सिध चउरासीह माइआ महि खेला ॥२॥
छिअ जती माइआ के बंदा ।
नवै नाथ सूरज अरु चंदा ॥
तपे रखीसर माइआ महि सूता ।
माइआ महि कालु अरु पंच दूता ॥३॥
सुआन सिआल माइआ महि राता ।
बंतर चीते अरु सिंघाता ॥
माजार गाडर अरु लूबरा ।
बिरख मूल माइआ महि परा ॥४॥
माइआ अंतरि भीने देव ।
सागर इंद्रा अरु धरतेव ॥
कहि कबीर जिसु उदरु तिसु माइआ ।
तब छूटे जब साधू पाइआ ॥५॥

६

जब लगु मेरी मेरी करै।
तब लगु काजु एकु नही सरै॥
जब मेरी मेरी मिटि जाइ।
तब प्रभ काजु सवारहि आइ॥
ऐसा गियानु बिचारु मना।
हरि की न सिमरहु दुख भंजना॥१॥
जब लग सिंघु रहै बन माहि।
तब लगु बनु फूलै ही नाहि॥
जब ही सिआरु सिंघ कउ खाइ।
फूलि रही सगली बनराइ॥२॥
जीतो बूडै हारो तिरै।
गुर परसादी पारि उतरै॥
दासु कबीरु कहै समझाइ।
केवल राम रहहु लिव लाइ॥३॥

७

सतरि सैइ सलार है जा के।
सवा लाखु पैकाबर ता के॥
सेस जु कहीअहि कोटि अठासी।
छपन कोटि जाके खेल खासी॥
मो गरीब की को गुजरावै।
मजलसि दूरि महलु को पावै॥१॥
तेतीस करोड़ी है खेलखाना।
चउरासी लख फिरै दिवानां॥
बाबा आदम कउ किछु नदरि दिखाई।
उन भी भिसति घनेरी पाई॥२॥

दिल खलहलु जा कै जरदरू बानी ।
छोडि कतेब करै सैतानी ॥
दुनिआ दोसु रोसु है लोई ।
अपना कीआ पावै सोई ॥३॥
तुम दाते हम सदा भिखारी ।
देउ जवाबु होइ बजगारी ॥
दासु कबीरु तेरी पनह समानां ।
भिसतु नजीकि राखु रहमाना ॥४॥

८

सभु कोई चलन कहत है ऊहां ।
ना जानउ बैकुंठु है कहां ॥
आप आप का मरमु न जानां ।
बातन ही बैकुंठु बखानां ॥१॥
जब लगु मन बैकुंठ की आस ।
तब लगु नाही चरन निवास ॥२॥
खाई कोटु न परलपगारा ।
ना जानउ बैकुंठ दुआरा ॥३॥
कहि कबीर अब कहीऐ काहि ।
साध संगति बैकुंठै आहि ॥४॥

९

किउ लीजै गढु बंका भाई ।
दोवर कोट अरु तेवर खाई ॥
पाँच पचीस मोह मद मतसर आडी परबल माइआ ।
जन गरीब को जोरु न पहुचै कहां करउ रघुराइआ ॥१॥
कामु किवारी दुख सुखु दरवानी पापु पुंनु दरवाजा ।
क्रोधु प्रधानु महा बड दुंदर तह मनु मावासी राजा ॥२॥

स्वाद सनाह टोपु ममता को कुबुधि कमान चढ़ाई ।
तिसना तीर रहे घट भीतरि इउ गढु लीओ न जाई ॥३॥
प्रेम पलीता सुरति हवाई गोला गिआनु चलाइआ ।
ब्रहमि अगनि सहजे परजाली एकहि चोट सिझाइआ ॥४॥
सतु संतोखु लै लरने लागा तोरे दुइ दरवाजा ।
साध संगति अरु गुर की क्रिपा ते पकरिओ गढ को राजा ॥५॥
भगवत भीरि सकति सिमरन की कटी काल भै फासी ।
दासु कमीरु चढ़िओ गढ़ ऊपरि राजु लीओ अबनासी ॥६॥

१०

गंग गुसाइनि गहिर गंभीर ।
जंजीर बाँधि करि खरे कबीर ॥
मनु न डिगै तनु काहे कउ डराइ ।
चरन कमल चितु रहिओ समाइ ॥१॥
गंगा की लहरि मेरी टुटी जंजीर ।
म्रिगछाला पर बैठे कबीर ॥२॥
कहि कबीर कोऊ संग न साथ ।
जल थल राखन है रघुनाथ ॥३॥

११

अगम द्रुगम गड़ि रचिओ बास ।
जा महि जोति करे परगास ॥
बिजुली चमकै होइ अनंदु ।
जिह पउड़े प्रभ बाल गोबिंद ॥
इहु जीउ राम नाम लिव लागै ।
जरा मरनु छूटै भ्रमु भागै ॥१॥
अबरन बरन सिउ मन ही प्रीति ।
हउमै गावनि गावहि गीत ॥

अनहद सबद होत झुनकार ।
जिह पउढे प्रभ स्री गोपाल ॥२॥
खंडल मंडल मंडल मंडा ।
त्रिय असथान तीनि तिअ खंडा ॥
अगम अगोचरु रहिआ अभ अंत ।
पारु न पावै को धरनीधर संत ॥३॥
कदली पुहप धूप परगास ।
रज पंकज महि लीओ निवास ॥
दुआदस दल अभ अंतरि मंत ।
जह पउड़े स्री कमलाकंत ॥४॥
अरध उरध मुखि लागो कासु ।
सुंन मंडल महि करि परगासु ॥
ऊहां सूरज नाही चंद ।
आदि निरंजनु करै अनंद ॥५॥
सो ब्रहमंडि पिंडि सो जानु ।
मानसरोवरि करि इसनानु ॥
सोहंसो जा कउ है जाप ।
जा कउ लिपत न होइ पुंन अरु पाप ॥६॥
अबरन बरन घाम नही छाम ।
अवर न पाईऐ गुर की साम ॥
टारी न टरै आवै न जाइ ।
सुंन सहज महि रहिओ समाइ ॥७॥
मन मधे जानै जे कोइ ।
जो बोलै सो आपै होइ ॥
जोति मंत्रि मनि असथिरु करै ।
कहि कबीर सो प्रानी तरै ॥८॥

१२

कोटि सूर जा कै परगास ।
कोटि महादेव अरु कबिलास ॥
दुरगा कोटि जाकै मरदनु करै ।
ब्रहमा कोटि वेद उचरै ॥
जउ जाचउ तउ केवल राम ।
आन देव सिउ नाही काम ॥१॥
कोटि चंद्रमे करहि चराक ।
सुर तेतीसउ जेवहि पाक ॥
नव ग्रह कोटि ठाढ़े दरबार ।
धरम कोटि जाकै प्रतिहार ॥२॥
पवन कोटि चउबारे फिरहि ।
बासक कोटि सेज बिसथरहि ॥
समुंद कोटि जा के पानीहार ।
रोमावलि कोटि अठारह भार ॥३॥
कोटि कमेर भरहि भंडार ।
कोटिक लखमी करै सीगार ॥
कोटिक पाप पुंन बहु हिरइ ।
इंद्र कोटि जा के सेवा करहि ॥४॥
छपन कोटि जा कै प्रतिहार ।
नगरी नगरी खिअत अपार ॥
लटछूटी वरतै बिकराल ।
कोटि कला खेलै गोपाल ॥५॥
कोटि जग जाकै दरबार ।
गंध्रब कोटि करहि जैकार ॥

बिदिआ कोटि सभै गुन कहै ।
तऊ पारब्रहम का अंतु न लहै ॥६॥
बावन कोटि जाकै रोमावली ।
रावन सैना जह ते छली ॥
सहस कोटि बहु कहत पुरान ।
दुरजोधन का मथिआ मानु ॥७॥
कंद्रप कोटि जाकै लवै न धरहि ।
अंतर अंतरि मनसा हरहि ॥
कहि कबीर सुनि सारिगपान ।
देहि अभै पदु मांगउ दान ॥८॥

रागु बिभास प्रभाती

१

मरन जीवन की संका नासी ।
आपन रंगि सहज परगासी ।।
प्रगटी जोति मिटिआ अंधिआरा ।
राम रतनु पाइआ करत बीचारा ॥१॥
जह अनंदु दुखु दूरि पइआना ।
मनु मानकु लिव ततु लुकाना ॥२॥
जो किछु होआ सु तेरा भाणा ।
जो इव बूझै सु सहजि समाणा ॥३॥
कहतु कबीरु किलबिख गए खीणा ।
मनु भइआ जगजीवन लीणा ॥४॥

२

अलहु एकु मसीति बसतु है अवरु मुलखु किसु केरा ।
हिंदू मूरति नाम निवासी दुह महि ततु न हेरा ॥
अलह राम जीवउ तेरे नाई ।
तू करि मिहरामति साई ॥१॥
दखन देस हरी का वासा पछिमि अलह मुकामा ।
दिल महि खोजि दिलै दिलि खोजहु एही ठउर मुकामा ॥२॥
ब्रहमन गिआस करहि चउबीसा काजी मह रमजाना ।
गिआरह मास पास कै राखे एकै माहि निधाना ॥३॥
कहा उडीसे मजनु कीआ किआ मसीति सिरु नाएं ।
दिल महि कपटु निवाज गुजारै किआ हज काबै जांएं ॥४॥
एते अउरत मरदा साजे ए सभ रूप तुमारे ।
कबीरु पंगुरा राम अलह का सभ गुरु पीर हमारे ॥५॥

कहतु कबीरु सुनहु नर नरवै परहु एक की सरना ।
केवल नामु जपहु रे प्रानी तब ही निहचै तरना ॥६॥

३

अवलि अलह नूरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे ।
एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे ॥
लोगा भरमि न भूलहु भाई ।
खालिकु खलक खलक महि खालकु पूरि रहिओ स्रब ठांई ॥१॥
माटी एक अनेक भांति करि साजी साजनहारै ।
न कछु पोच माटी के भांडे ना कछु पोच कुंभारै ॥२॥
सभ महि सचा एको सोई तिस का कीआ सभु कछु होई ।
हुकमु पछानै सु एको जानै बंदा कहीऐ सोई ॥३॥
अलहु अलखु न जाई लखिआ गुरि गुड़ु दीना मीठा ।
कहि कबीर मेरी संका नासी सरब निरंजनु डीठा ॥४॥

४

बेद कतेब कहहु मत झूठे झूठा जो न बिचारै ।
जउ सभ महि एकु खुदाइ कहत हउ तउ किउ मुरगी मारै ॥
मुलां कहहु निआउ खुदाई ।
तेरे मन का भरमु न जाई ॥१॥
पकरि जीउ आनिआ देह बिनासी माटी कउ बिसमिल कीआ ।
जोति सरूप अनाहत लागी कहु हलालु किउ कीआ ॥२॥
किआ उजू पाकु कीआ मुहु धोइआ किआ मसीति सिरु लाइआ ।
जउ दिल महि कपटु निवाज गुजारहु किआ हज काबै जाइआ ॥३॥
तूं नापाकु पाकु नही सूझिआ तिसका मरमु न जानिआ ।
कहि कबीर भिसति ते चूका दोजक सिउ मनु मानिआ ॥४॥

५

सुंन संधिआ तेरी देव देवा कर अधपति आदि समाई।
सिध समाधि अंतु नही पाइआ लागि रहे सरनाई॥
लेहु आरती हो पुरख निरंजन सतिगुर पूजहु भाई।
ठाढा ब्रहमा निगम बीचारै अलखु न लखिआ जाई॥१॥
ततु तेलु नामु कीआ बाती दीपकु देह उज्यारा।
जोति लाइ जगदीस जगाइआ बूझै बूझनहारा॥२॥
पंचे सबद अनाहद बाजे संगे सारिंगपानी।
कबीर दास तेरी आरती कीनी निरंकार निरबानी॥३॥

सलोक

कबीर मेरी सिमरनी रसना ऊपरि रामु ।
आदि जुगादी सकल भगत ताको सुखु बिस्रामु ॥१॥
कबीर मेरी जाति कउ सभु को हसनेहारु ।
बलिहारी इस जाति कउ जिह जपिओ सिरजनहारु ॥२॥
कबीर डगमग किआ करहि कहा डुलावहि जीउ ।
सरब सूख को नाइको राम नाम रसु पीउ ॥३॥
कबीर कंचन के कुंडल बने ऊपरि लाल जड़ाउ ।
दीसहि दाधे कान जिउ जिन मनि नाही नाउ ॥४॥
कबीर ऐसा एकु आधु जो जीवत म्रितकु होइ ।
निरभै होइ कै गुन रवै जत पेखउ तत सोइ ॥५॥
कबीर जा दिन हउ मूआ पाछै भइया अनंदु ।
मोहि मिलिओ प्रभु आपना संगी भजहि गोबिंदु ॥६॥
कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ ।
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ ॥७॥
कबीर आई मुझहि पहि अनिक करे करि भेसु ।
हम राखे गुर आपने उनि कीनो आदेसु ॥८॥
कबीर सोई मारीऐ जिह मूऐ सुखु होइ ।
भलो भलो सभु को कहै बुरो न मानै कोइ ॥९॥
कबीर राती होवहि कारीआ कारे ऊभे जंत ।
लै फाहे उठि धावते सि जानि मारे भगवंत ॥१०॥
कबीर चंदन का बिरवा भला बेढ़िओ ढाक पलास ।
ओइ भी चंदनु होइ रहे बसे जु चंदन पासि ॥११॥
कबीर बांसु बडाई बूडिआ इउ मत डूबहु कोइ ।
चंदन कै निकटे बसै बांसु सुगंधु न होइ ॥१२॥

कबीर दीनु गवाइआ दुनी-सिउ दुनी न चाली साथि।
पाइ कुहाड़ा मारिआ गाफलि अपने हाथ ॥१३॥
कबीर हज जह हउ फिरिओ कउतक ठाओ ठाइ।
इक राम सनेही बाहरा, ऊजरु मेरै भांइ ॥१४॥
कबीर संतन की झुंगीआ भली, भठि कुसती-गाउ।
आगि लगउ तिह धउलहर जिह नाही हरि को नाउ ॥१५॥
कबीर संत मूए किआ रोईऐ जो अपुने ग्रिहि जाइ।
रोवहु साकतु बापुरे जु हाटै हाट बिकाइ ॥१६॥
कबीर साकत ऐसा है जैसी लसन की खानि।
कोने बैठे खाईऐ परगट होइ निदान ॥१७॥
कबीर माइआ डोलनी पवनु झकोलनहारु।
संतहु माखनु खाइया छाछि पीऐ संसारु ॥१८॥
कबीर माइआ डोलनी पवनु वहै हिवधार।
जिनि बिलोइआ तिनि थाइआ अवर बिलोवनहार ॥१९॥
कबीर माइआ चोरटी मुसि मुसि लावै हाटि।
एकु कबीरा ना मुसै जिनि कीनी बारह-बाट ॥२०॥
कबीर सूखु न एंह जुग, करहि जु बहुतै मीत।
जो चितु राखहि एक सिउ ते सुखु पावहि नीत ॥२१॥
कबीर जिसु मरनै ते जगु डरै मेरे मन आनंदु।
मरने ही ते पाईऐ पूरनु परमानंदु ॥२२॥
राम पदारथु पाइकै कबीरा गांठि न खोल्ह।
नही पटणु नही पारखू नही गाहकु नही मोलु ॥२३॥
कबीर तासिउ प्रीति करि जाको ठाकुरु रामु।
पंडित राजे भूपती आवहि कउने काम ॥२४॥
कबीर प्रीति इक सिउ कीए आन दुबिधा जाइ।
भावै लांबे केस करु भावै घररि मुडाइ ॥२५॥

कबीर जगु काजल की कोठरी अंध परे तिस माहि ।
हउ बलिहारी तिन्ह कउ पैसि जु नीकसि जाहि ॥२६॥
कबीर इहु तनु जाइगा सकहु ते लेहु बहोरि ।
नांगे पावहु ते गए जिन्ह के लाख करोरि ॥२७॥
कबीर इहु तनु जाइगा कवनै मारगि लाइ ।
कै संगति करि साध की कै हरि के गुन गाइ ॥२८॥
कबीर मरता मरता जगु मूआ मरि भी न जानिआ कोइ ।
ऐसे मरने जो मरै बहुरि न मरना होइ ॥२९॥
कबीर मानस जनमु दुलंभु है होइ न बारैबार ।
जिउ बन फल पाके भुइ गिरहि बहुरि न लागहि डार ॥३०॥
कबीरा तुही कबीर तू तेरो नाउ कबीरु ।
राम रतनु तब पाइऐ जउ पहिले तजहि सरीरु ॥३१॥
कबीर झंखु न झंखीऐ तुमरो कहिओ न होइ ।
करम करीम जु करि रहे मेटि न साकै कोइ ॥३२॥
कबीर कसउटी राम की झूठा टिकै न कोइ ।
राम कसउटी सो सहै जो मरि जीवा होइ ॥३३॥
कबीर ऊजल पहिरहि कापरे पान सुपारी खाहि ।
एकस हरि के नाम बिनु बाधे जमपुर जांहि ॥३४॥
कबीर बेड़ा जरजरा फूटे छेंक हजार ।
हरूए हरूए तिरि गए डूबे जिन सिर भार ॥३५॥
कबीर हाड जरे जिउ लाकरी केस जरे जिउ घासु ।
इहु जग जरता देखि कै भइओ कबीर उदासु ॥३६॥
कबीर गरबु न कीजीऐ चाम लपेटे हाड ।
हैवर ऊपर छत्र तर ते फुनि धरनी गाड ॥३७॥
कबीर गरबु न कीजीऐ ऊचा देखि अवासु ।
आजु कालि भुइ लेटणा ऊपरि जामै घासु ॥३८॥

कबीर गरबु न कीजीऐ रंकु न हसीऐ कोइ ।
अजहु सु नाउ समुंद्र महि किआ जानउ किआ होइ ॥३९॥
कबीर गरबु न कीजीऐ देही देखि सुरंग ।
आजु कालि तजि जाहुगे जिउ कांचुरी भुयंग ॥४०॥
कबीर लूटना है त लूटि लै राम नाम है लूटि ।
फिरि पाछै पछुताहुगे प्रान जाहिंगे छूटि ॥४१॥
कबीर ऐसा कोई न जनमिओ अपनै घर लावै आगि ।
पांचउ लरिका जारि कै रहै राम लिव लागि ॥४२॥
को है लरिका बेचई लरिकी बेचै कोइ ।
सांझा करै कबीर सिउ हरि संगि बनजु करेइ ॥४३॥
कबीर अवरह कउ उपदेसते मुख मै परिहै रेतु ।
रासि बिरानी राखते खाया घर का खेतु ॥४४॥
कबीर साधू की संगति रहउ जउ की भूसी खाउ ।
होनहारु सो होइहै साकत संगि न जाउ ॥४५॥
कबीर संगति साध की दिन दिन दूना हेतु ।
साकत कारी कांबरी धोए होइ ने सेतु ॥४६॥
कबीर मनु मूंडिआ नही केस मुंडाए कांइ ।
जो किछु कीआ सु मन कीआ मूंडा मूंडु अजांइ ॥४७॥
कबीर रामु न छोडीऐ तनु धनु जाइ त जाउ ।
चरन कमल चितु बेधिआ रामहि नामि समाउ ॥४८॥
कबीर जो हम जंतु बजावते टूटि गईं सभ तार ।
जंतु बिचारा किआ करै चले बजावन हार ॥४९॥
कबीर माइ मूंडउ तिह गुरू की जा ते भरमु न जाइ ।
आप डुबे चहु बेद महि चेले दीए बहाइ ॥५०॥
कबीर जेते पाप कीए राखे तलै दुराइ ।
परगट भए निदान सभ जब पूछे धरमराइ ॥५१॥

कबीर हरि का सिमरनु छाडि कै पालिओ बहुतु कुटंबु ।
धंधा करता रहि गइआ भाई रहिआ न बंधु ॥५२॥
कबीर हरि का सिमरनु छाडि कै राति जगावन जाइ ।
सरपनि होइ कै अउतरै जाए अपुने खाइ ॥५३॥
कबीर हरि का सिमरनु छाडि कै अहोई राखै नारि ।
गदही होइ कै अउतरै भारु सहै मन चारि ॥५४॥
कबीर चतुराई अति घनी हरि जपि हिरदै माहि ।
सूरी ऊपरि खेलना गिरै त ठाहर नाहि ॥५५॥
कबीर सोई मुखु धंनि है जा मुख कहीऐ रामु ।
देही किस की बापुरी पवित्रु होइगो ग्रामु ॥५६॥
कबीर सोई कुल भली जा कुल हरि को दासु ।
जिह कुल दासु न ऊपजै सो कुल ढाक पलासु ॥५७॥
कबीर है गइ बाहन सघन घन लाख धजा फहराइ ।
इआ सुख ते भिख्या भली जउ हरि सिमरत दिन जाइ ॥५८॥
कबीर सभु जगु हउ फिरिओ मांदलु कंध चढाइ ।
कोई काहू को नही सभ देखी ठोकि बजाइ ॥५९॥
मारगि मोती बीथरे अंधा निकसिओ आइ ।
जोति बिना जगदीसकी जगतु उलंघे जाइ ॥६०॥
बूडा बंसु कबीर का उपजिओ पूतु कमालु ।
हरि का सिमरनु छाडि कै घरि लै आया मालु ॥६१॥
कबीरसाधू कउ मिलने जाईऐ साथि न लीजै कोइ ।
पीछै पाउ न दीजीऐ आगै होइ सु होइ ॥६२॥
कबीर जगु बाधिओ जिह जेवरी तिह मति बंधहु कबीर ।
जैहहि आटा लोन जिउ सोनि समानि सरीरु ॥६३॥
कबीर हंसु उडिओ तनु गाडिओ सोझाई सैनाह ।
अजहू जीउ न छोडई रंकाई नैनाह ॥६४॥

कबीर नैन निहारउ तुझ कउ स्रवन सुनउ तुअ नाउ ।
बैण उचरउ तुअ नाम जी चरन कमल रिद्र ठाउ ॥६५॥
कबीर सुरग नरक ते मै रहिओ सतिगुर के परसादि ।
चरन कमल की मउज महि रहउ अंति अरु आदि ॥६६॥
कबीर चरन कमल की मउज को कहि कैसे उनमान ।
कहिबे कउ सोभा नही देखा ही परवानु ॥६६॥
कबीर देखि कै किह कहउ कहे न को पतीआइ ।
हरि जैसा तैसा उही रहउ हरखि गुन गाइ ॥६८॥
कबीर चुगै चितारै भी चुगै चुगि चुगि चितारे ।
जैसे बचरहि कूंज मन माइआ ममता रे ॥६९॥
कबीर अंबर घनहरु छाइआ बरखि भरे सरताल ।
चात्रिक जिउ तरसत रहै तिन को कउनु हवालु ॥७०॥
कबीर चकई जउ निसि बीछरै आइ मिलै परभाति ।
जो नर बिछुरे राम सिउ ना दिन मिलै न राति ॥७१॥
कबीर रैनाइर बिछोरिआ रहु रे संख मसूरि ।
देवल देवल धाहड़ी देसहि उगवत सूर ॥७२॥
कबीर सूता किआ करहि जागु रोइ भै दुख ।
जा का बासा गोर महि सो किउ सोवै सुख ॥७३॥
कबीर सूता किआ करहि उठि कि न जपहि मुरारि ।
इक दिन सोवनु होइ गो लांबे गोड पसारि ॥७४॥
कबीर सूता किआ करहि बैठा रहु अरु जागु ।
जाके संग ते बीछुरा ताही के संग लागु ॥७५॥
कबीर संत की गैल न छोडीऐ मारगि लागा जाउ ।
पेखत ही पुंनीत होइ भेटत जपीऐ नाउ ॥७६॥
कबीर साकत संगु न कीजीऐ दूरहि जाईऐ भागि ।
बासनु कारो परसीऐ तउ कछु लागै दागु ॥७७॥

कबीर रासु न चेतिओ जरा पहूँचिओ आइ ।
लागी मंदिर दुआर ते अब किआ काढिआ जाइ ॥७८॥
कबीर कारनु सो भइओ जो कीनो करतार ।
तिस बिनु दूसर को नही एकै सिरजनहारु ॥७९॥
कबीर फल लागे फलनि पाकन लागे आंब ।
जाइ पहूचहि खसम कउ जउ बीचि न खाही कांब ॥८०॥
कबीर ठाकुर पूजहि मोलि ले मन हठ तीरथ जाहि ।
देखा देखी स्वांगु धरि भूले भटका खाहि ॥८१॥
कबीर पाहन परमेसुरु कीआ पूजै सभु संसार ।
इस भरवासे जो रहे बूडे काली धार ॥८२॥
कबीर कागद की ओबरी मसु के करम कपाट ।
पाहन बोरी पिरथमी पंडित पाड़ी बाट ॥८३॥
कबीर कालि करता अबहि करु अब करंता सु इताल ।
पाछै कछू न होइगा जउ सिर पर आवै कालु ॥८४॥
कबीर अैसा जंतु इकु देखिआ जैसी धोई लाख ।
दीसै चंचलु बहु गुना मतिहीना नापाक ॥८५॥
कबीर मेरी बुधि कउ जमु न करै तिसकार ।
जिनि इहु जमूआ सिरजिआ सु जपिआ परविदगार ॥८६॥
कबीर कसतूरी भइआ भवर भए सभ दास ।
जिउ जिउ भगति कबीर की तिउ तिउ राम निवास ॥८७॥
कबीर गहगचि परिओ कुटंब कै कांठै रहि गइओ राम ।
आइ परे धरमराइ के बीचहि धूंसा धाम ॥८८॥
कबीर साकत ते सूकर भला राखै आछा गाउ ।
उहु साकतु बपुरा मरि गइआ कोइ न लैहै नाउ ॥८९॥
कबीर कउडी कउडी जोरि कै जोरे लाख करोरि ।
चलती बार न कछु मिलिओ लई लंगोटी तोरि ॥९०॥

कबीर बैसनो हूआ त किआ भइआ माला मेलीं चारि ।
बाहरि कंचनु बारहा भीतरि भरी भंगार ॥९१॥
कबीर रोड़ा होइ रहु बाट का तजि मन का अभिमानु ।
ऐसा कोई दासु होइ ताहि मिलै भगवानु ॥९२॥
कबीर रोड़ा हूआ त किआ भइआ पंथी कउ दुखु देइ ।
ऐसा तेरा दासु है जिउ धरनी महि खेइ ॥९३॥
कबीर खेह हुई तउ किआ भइआ जौ उडि लागै अंग ।
हरिजनु ऐसा चाहीऐ जिउ पानी सरबंग ॥९४॥
कबीर पानी हूआ त किआ भइआ सीरा ताता होइ ।
हरिजनु ऐसा चाहीऐ जैसा हरि ही होइ ॥९५॥
ऊच भवन कनकामनी सिखरि धजा फहराइ ।
ता ते भली मधूकरी संत संग गुन गाइ ॥९६॥
कबीर परभाते तारे खिसहि तिउ इहु खिसै सरीरु ।
ए दुइ अखर ना खिसहि सो गहि रहिओ कबीरु ॥९७॥
कबीर कोठी काठ की दहदिसि लागी आगि ।
पंडित पंडित जलि मूए मूरख उबरे भागि ॥९८॥
कबीर संसा दूरि करु कागद देह बिहाइ ।
बावन अखर सोधि कै हरि चरनी चितु लाइ ॥९९॥
कबीर संतु न छाडै संतई जउ कोटिक मिलहि असंत ।
मलिआगरु भुयंगम बेढिओ त सीतलता न तजंत ॥१२१॥
कबीर मनु सीतलु भइआ पाइआ ब्रहम गिआनु ।
जिनि जुआला जगु जारिआ सु जन के उदक समानि ॥१०१॥
कबीर सारी सिरजनहार की जानै नाही कोइ ।
कै जानै आपन धनी कै दासु दीवानी होइ ॥१०२॥
कबीर भली भई जो भउ परिया दिसा गईं सभ भूलि ।
ओरा गरि पानी भइआ जाइ मिलिओ ढलि कूलि ॥१०३॥

कबीरा धूरि सकेलि कै पुरीआ बांधी देह ।
दिवस चारि को पेखना अंति खेर की खेह ॥१०४॥
कबीर सूरज चांद कै उदै भई सभ देह ।
गुर गोबिंद के बिनु मिले पलटि भई सभ खेह ॥१०५॥
जहँ अनभउ तहँ भै नहीं जह भउ तह हरि नाहि ।
कहिओ कबीर बिचारि कै संत सुनहु मन माहि ॥१०६॥
कबीर जिनहु किछू जानिआ नही तिन सुख नीद बिहाइ ।
हमहु जू बूझा बूझनो पूरी परी बलाइ ॥१०७॥
कबीर मारे बहुतु पुकारिआ पीर पुकारै अउर ।
लागी चोट मिरंम की रहिओ कबीरा ठउर ॥१०८॥
कबीर चोट सुहेली सेल की लागत लेइ उसास ।
चोट सहारै सबद की तासु गुरू मै दास ॥१०९॥
कबीर मुलां मुनारे किआ चढहि सांई न बहरा होइ ।
जा कारनि तूं बांग देहि दिल ही भीतरि जोइ ॥११०॥
सेख सबूरी बाहरा किआ हज काबै जाइ ।
कबीर जा की दिल साबित नही ताकउ कहां खुदाइ ॥१११॥
कबीर अलह की करि बंदगी जिह सिमरत दुखु जाइ ।
दिल महि सांई परगटै बुझै बलंती नाइ ॥११२॥
कबीर जोरी कीए जुलमु है कहता नाउ हलालु ।
दफतरि लेखा मांगीऐ तब होइगो कउनु हवालु ॥११३॥
कबीर खूबु खाना खीचरी जामहि अंम्रितु लोनु ।
हेरा रोटी कारने गला कटावै कउनु ॥११४॥
कबीर गुरु लागा तब जानीऐ मिटै मोहु तन ताप ।
हरख सोग दाझै नही तब हरि आपहि आप ॥११५॥
कबीर राम कहन महि भेदु है तामहि एकु बिचारु ।
सोई रामु सबै कहहि सोई कउतकहार ॥११६॥

कबीर रामै राम कहु कहिबे माहि बिबेक ।
एकु अनेकहि मिलि गइआ एक समाना एक ॥११७॥
कबीर जा घर साध न सेवीअहि हरि की सेवा नाहिं ।
ते घर मरघट सारखे भूत बसहि तिन माहि ॥११८॥
कबीर गूंगा हूआ बावरा बहरा हूआ कान ।
पावहु ते पिंगुल भइआ मारिआ सतिगुर बान ॥११९॥
कबीर सतिगुर सूरमे बाहिआ बानु जु एकु ।
लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु ॥१२०॥
कबीर निरमल बूंद अकास की परि गई भूमि बिकार ।
बिनु संगति इउ मानई होइ गई भठ–छार ॥१२१॥
कबीर निरमल बूंद अकास की लीनी भूमि मिलाइ ।
अनिक सिआने पचि गए ना निरवारी जाइ ॥१२२॥
कबीर हज काबे हउ जाइ था आगे मिलिआ खुदाइ ।
सांई मुझ सिउ लरि परिआ तुझै किन्हि फुरमाई गाइ ॥१२३॥
कबीर हज काबै हंइ होइ गइआ केती बार कबीर ।
सांई मुझ महि किआ खता मुखहु न बोलै पीर ॥१२४॥
कबीर जीअ जु मारहि जोरु करि कहते हहि जु हलालु ।
दफतरु दई जब काढि है होइगा कउनु हवालु ॥१२५॥
कबीर जोरु कीआ सो जुलमु है लेइ जबाबु खुदाइ ।
दफतर लेखा नीकसै मार मुहै मुहि खाइ ॥१२६॥
कबीर लेखा देना सुहेला जउ दिल सूची होइ ।
उसु साचे दीबान महि पला न पकरै कोइ ॥१२७॥
कबीर धरती अरु आकास महि दुई तूं बरी अबध ।
खट दरसन संसे परे अरु चउरासीह सिध ॥१२८॥
कबीर मेरा मुझ महि किछु नही जो किछु है सो तेरा ।
तेरा तुझ कउ सउपते किआ लागै मेरा ॥१२९॥

कबीर तूं तूं करता तू हूआ मुझ महि रहा न हूं ।
जब आपा पर का मिटि गइआ जत देखउ तत तू ॥१३०॥
कबीर बिकारह चितवते झूठे करते आस ।
मनोरथु कोइ न पूरिओ चाले ऊठि निरास ॥१३१॥
कबीर हरि का सिमरनु जो करै सो सुखीआ संसारि ।
इत उत कतहि न डोलई जिस राखै सिरजनहार ॥१३२॥
कबीर काइआ कजली बनु भइआ मनु कुंचरु मयमंतु ।
अंकसु गयानु रतनु है खेवटु बिरला संतु ॥१३३॥
कबीर राम रतनु मुखु कोथरी पारख आगै खोलि ।
कोई आइ मिलैगो गाहकी लेगो महगे मोलि ॥१३४॥
कबीर राम नामु जानिओ नही पालिओ कटकु कुटंबु ।
धँधे ही महि मरि गइओ बाहरि भई न बंब ॥१३५॥
कबीर आँखी केरे माटुके पलु पलु गई बिहाइ ।
मनु जंजालु न छोडई जम दीआ दमामां आइ ॥१३६॥
कबीर तरवर रूपी रामु है फल रूपी बैरागु ।
छाइआ रूपी साधु है जिनि तजिआ बादु बिबादु ॥१३७॥
कबीर ऐसा बीजु बोइ बारह मास फलंत ।
सीतल छाइआ गहिर फल पंखी केल करंत ॥१३८॥
कबीर दाता तरवरु दइआ फलु उपकारी जीवंत ।
पंखी चले दिसावरी बिरखा सुफल फलंत ॥१३९॥
कबीर साधू संगु परापती लिखिआ होइ लिलाट ।
मुकति पदारथु पाईऐ ठाक न अवघट घाट ॥१४०॥
कबीर एक घड़ी आधी घरी आधी हूं ते आध ।
भगतन सेती गोसटे जो कीने सो लाभ ॥१४१॥
कबीर भांग माछुली सुरापानि जो जो प्रानी खांहि ।
तीरथ बरत नेम कीए ते सभै रसातल जांहि ॥१४२॥

नीचे लोइन करि रहउ ले साजन घट माहि ।
सभ रस खेलउ पीअ सउ किसी लखावउ नाहि ॥१४३॥
आठ जाम चउसठि घरी तुअ निरखत रहै जीउ ।
नीचे लोइन कीउ करउ सभ घट देखउ पीउ ॥१४४॥
सुनु सखी पीअ महि जीउ बसै जीअ महि बसै कि पीउ ।
जीउ पीउ बूझहु नही घटि महि जीउ कि पीउ ॥१४५॥
कबीर बामनु गुरू है जगत का भगतन का गुरु नाहि ।
अरझि उरझि कै पचि मूआ चारउ बेदहु माहि ॥१४६॥
हरि है खांडु रेतु महि बिखरी हाथी चुनी न जाइ ।
कहि कबीर गुरि भली बुझाई, कीटी होइ कै खाइ ॥१४७॥
कबीर जउ तुहि साध पिरंम की सीसु काटि करि गोइ ।
खेलत खेलत हाल करि जो किछु होइ त होइ ॥१४८॥
कबीर जउ तुहि साध पिरंम की पाके सेती खेलु ।
काची सरसउ पेलि कै ना खलि भई न तेलु ॥१४९॥
ढूंढत डोलहि अंध गति अरु चीन्हत नाही संत ।
कहि नामा ! किउ पाईऐ बिनु भगतहु भगवंतु ॥१५०॥
हरि सो हीरा छाडि कै करहि आन की आस ।
ते नर दोजक जाहिगे सति भाखै रविदास ॥१५१॥
कबीर जउ ग्रिहु करहि त धरमु करु नाहि त करु बैरागु ।
बैरागी बंधनु करै ता को बडो अभागु ॥१५२॥

पदों के अर्थ

सिरी रागु

१

एक पुत्र होने पर ही घर में मंगल गीत गाए जाते हैं। माता समझती है कि पुत्र बड़ा हो रहा है किन्तु इतना नहीं जानती कि दिन-दिन उसकी आयु घटती जाती है। उसे 'मेरा'-'मेरा' करते और अधिक दुलार करते हुए देखकर यमराज हँसता है। इसी भाँति संसार पर तेरा भ्रम हो गया है। तुझे सत्य का बोध कैसे हो जब तू माया से मोहित हो रहा है? कबीर कहता है कि तू विषय-रस छोड़ दे—(नहीं तो) इसकी संगति में तेरा मरण निश्चय है। ऐ प्राणी, तू अनंत जीवन ईश्वर का जाप कर और इसी वाणी से तू भव-सागर के पार जा। जो भाव उसे (ईश्वर को) अच्छा लगता है उस भाव से ही उसकी परिसेवना उचित है। किन्तु बीच ही में तू भ्रम में भूल जाता है। जब तेरे हृदय में नैसर्गिक चेतनता (सहज) उत्पन्न होगी तभी तेरे हृदय में ज्ञान जाग्रत होगा और गुरु की कृपा से अपने आप से तेरी लौ लगेगी—इस प्रकार की संगति से तेरा मरण नहीं होगा और तू विश्वात्मा के आदेश को पहिचान कर उससे मिल सकेगा।

२

हे पंडित, एक आश्चर्य सुन। अब कुछ भी कहने को शेष नहीं है। जिसने सुर, नर और गंधर्व समूहों को मोहित कर लिया है और तीनों लोकों को एक शृंखला से बाँध दिया है उस विश्व-स्वामी राम (ररंकार) के अनाहत की यंत्रिका बज रही है जिसकी दृष्टिमात्र से आत्मा उस नाद में लीन हो जाती है। यह आकाश ही एक भट्ठी है जो शब्द की सिंगी और चुंगी से जाग्रत की जाती है। यह पृथ्वी ही एक

स्वर्ण कलश है। उसमें (ब्रह्मानंद रस की) एक निर्मल धारा चू रही है जो शनैःशनैः रस में रस की मात्रा बढ़ती जाती है। (इस रस के पान करने के लिए) एक अनुपन बात यह है कि पवन ही इस रस के लिए प्याले के रूप में सुसज्जित किया गया है। (मैं तुमसे यह पूछता हूँ कि) तीनों लोकों में इस रस का पीने वाला एक योगिराज कौन है? कबीर कहता है कि पुरुषोतम का ज्ञान इस प्रकार प्रकट हुआ है और कबीर उसी रग में रंजित हो गया है। समस्त संसार तो भ्रम में भूला हुआ है। केवल मन इस राम रूपी रसायन* में मतवाला हो गया है।

रागु गउड़ी

१

अब राम रूपी जल ने मुझ जलते हुए को पा लिया है और उस जल ने मेरे जलते हुए शरीर को बुझा दिया है। (तुम अपने मन को मारने के लिए वन जाते हो किंतु उस जल के विना भगवान की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस अग्नि से सुर नर जल चुके हैं—(उस अग्नि से) राम रूपी जल ने भक्तों को जलाने से बचा लिया। इस भव सागर में एक सुख-सागर भी है और पान करने से उसका जल कभी कम नहीं होता। कबीर कहता है कि तू सारंपाणी (विश्वात्मा) का भजन कर क्योंकि राम रूपी जल से ही तेरी तृष्णा (प्यास) बुझ सकी है।

२

हे माधव, तेरे आनंद रूपी जल को पीते-पीते आज तक मेरी प्यास नहीं बुझी। (क्योंकि) इस जल में (वासना की) आग अधिकाधिक उठी हुई है। (यहाँ बड़वाग्नि से तात्पर्य है। तू यदि सागर है तो मैं मछली हूँ यद्यपि मैं जल में रहते हुए भी जल से रहित हूँ। तू पिंजड़ा है तो मैं तेरा शुक हूँ। (इस पिंजड़े में रहते हुए) यम रूपी

---

*वह औषधि जिसके खाने से मनुष्य वृद्ध या बीमार नहीं होता।

बिलाव मेरा क्या कर सकता है? तू वृक्ष है, मैं पक्षी हूँ। किंतु फिर भी मैं मंदभाग्य हूँ कि तेरा दर्शन मुझे नहीं मिला। तू सतगुरु है, मैं तेरा नित्य शिष्य हूँ। कबीर कहता है कि कम से कम अंत समय में तो तू मुझ से मिल जा।

३

जब हमने एक (ईश्वर) को एक ही समझ कर जाना है (अर्थात् बहुत से देवी देवताओं की पूजा नहीं की) तब लोगों को क्यों दुःख होता है? हमने मर्यादा-हीन होकर अपनी लज्जा खो दी। (अतः) हमारी खोज में किसी को नहीं पड़ना चाहिए। हम नीच हैं और मन से भी हम निकृष्ट हैं। हमारा किसी से भी कुछ लेना-देना (साझ-पाति) नहीं है। जिसे मर्यादा और अमर्यादा का ध्यान नहीं है, उसे क्या लज्जा? (किंतु अपनी और मेरी वास्तविकता) तब समझोगे जब तुम्हारा पार्श्वभाग (सं०--पाजस्य) उघरेगा। कबीर कहता है कि हरि ही सच्चे स्वामी हैं। सब को छोड़कर केवल राम का भजन करो।

४

दूसरे के मरने का क्या शोक किया जाय? शोक तो तभी करना चाहिए जब स्वयं हम जीवित रहें! किंतु मैं नहीं मरूँगा यह संसार भले ही मरे क्योंकि मुझे अब जिलाने वाला मिल गया है। इस शरीर से (वासना की) सुगंधि महक रही है—उसी (क्षणिक) सुख से तू परमानंद (ब्रह्मानंद) भूल गया है। एक कूप है और उसकी पाँच पानी भरने वालियाँ हैं। रस्सी के टूट जाने पर भी वे मूर्ख पानी भरती जाती हैं। (अर्थात् यह शरीर कूप की तरह है और शरीर की पंचेन्द्रियाँ उससे रस लेती हैं। इन इन्द्रियों के साधनों के नष्ट हो जाने पर भी ये रस लेने के लिए प्रयत्नशील रहती हैं।) कबीर कहता है कि यदि एक बुद्धि से विचार किया जाय तो न वह कुँआ है और न पनिहारियाँ हैं। (यह शरीर ही मिथ्या है।)

५

अचर, चर, कीट और पतंग के अनेक जन्मों में हमने बहुत रस-रंग किए। हे राम, जब से हमने गर्भ में निवास किया, तब से हमने इन योनियों के अनेक घर बसाए हैं। (इस जन्म में) कभी हम योगी हैं, कभी यती, कभी तपस्वी और कभी ब्रह्मचारी। कभी छत्रपति राजा और कभी भिखारी हैं। किंतु इतना निश्चय है कि शाक्त मर जाते हैं और संत जीवित रहते हैं क्योंकि वे जिह्वा से रामामृत पीते हैं। कबीर कहता है कि हे प्रभु, आप कृपा कीजिए। जो कुछ भी मुझ में अभाव हो उसे कृपया पूरा कर दीजिए।

६

कबीर ने ऐसा आश्चर्य देखा है कि यह संसार दही (ब्रह्म) के धोखे में पानी (माया) का मंथन कर रहा है। गधा (कपटी गुरु या कपटी मन) हरी अंगूरी बेल (ब्रह्म-ज्ञान) चर रहा है और वह (अपने अहंकार में) हँसता और रेंकता (हीस-हीग करता) रहता है और मरता है। भैंस (माया) मुख रहित बछड़ा (अज्ञान) उत्पन्न करती है जो पृथ्वी-तल पर प्रसन्न होकर (जीवों का) भक्षण करता है। कबीर कहता है कि इस खेल का सारा रहस्य मुझ पर प्रकट हो गया। भेड़ (वासना) बकरी के बच्चे लेले (धार्मिक पुस्तकों) का स्तन-पान करती है। कबीर कहता है कि राम में रमण करते हुए (शुद्ध) मति मुझ में प्रकट हो गई मैंने यह सरल युक्ति (सोझी गुरि) प्राप्त की है।

७

जिस प्रकार जल छोड़कर मछली बाहर अनेक कष्ट पाती है उसी प्रकार पूर्व-जन्म में तप से रहित होकर इस जन्म में मेरी बहुत बुरी दशा हुई। हे राम, अब कहो कि मेरी क्या गति होगी ? क्या बनारस छोड़कर मेरी मति भ्रष्ट हो गई ? मैंने अपना सारा जन्म तो बनारस में व्यतीत किया और मरते समय मैं मगहर में उठ कर चला आया।

काशी में मैंने बहुत वर्षों तक तप किया। लेकिन मरते समय मैं मगहर का निवासी हो गया। ऐ कबीर, काशी और मगहर को तो तूने समान समझा है किंतु अपनी ओछी भक्ति से तू कैसे (भव-सागर के) पार उतरेगा? तू इस महामंत्र (गुरु) को गर्ज कर कह दे (जिसे बनारस के स्वामी शिव और सभी लोग जानते हैं कि) कबीर मरने पर भी श्री राम में रमण करता है।

८

जिस शरीर में सुगंधित द्रव-पदार्थ और चंदन मल-मल कर लगाया जाता है वहा लकड़ी के साथ जलता है। इस शरीर और धन की क्या बड़ाई है कि पृथ्वी पर गिर पड़ने (मर जाने) के बाद फिर उठाया नहीं जा सकता। जो लोग रात को सोते हैं और दिन में काम करते हैं और एक क्षण भी ईश्वर का नाम नहीं लेते, उनके हाथ में डोर है (शासन करने वाले हैं) और वे मुख में तांबूलादि खाए हुए हैं। किंतु मरते समय वही लोग (अपनी अरथी पर) चोर की भाँति बाँधे गए हैं। जो लोग युक्ति से धीरे-धीरे हरि का गुण गान करते हैं वे राम ही राम में रमण करते हुए सुख पाते हैं। हरि ने ही कृपा करके मुझ में नाम की दृढ़ता दी और उन्हीं ने अपनी सुगंधि मुझ में बसा दी है। कबीर कहता है कि रे अंधे, तू चेत। केवल राम ही सत्य है और यह समस्त प्रपंच झूठा है।

९

जब मैंने गोविंद को जान लिया है तो जो मेरे लिए यम थे वही उलट कर मेरे लिए राम हो गए। इस स्थिति में दुःख के विनाश होने पर मैंने विश्राम किया। मेरे शत्रु ही उलट कर मेरे लिए मित्र हो गए हैं और शाक्त ही उलट कर हितचिंतक सज्जन बन गए हैं। अब सब लोगों ने मुझे हितकारक मान लिया है। जब मैंने गोविंद को जान लिया तो शांति हुई। जो शरीर में करोड़ों बाधाएँ थीं वे

सब उलट कर सुख-पूर्ण सहज समाधि में परिवर्तित हो गईं। जो अपने आप को स्वयं पहिचान लेता है उसे न तो रोग और न त्रिविध ताप व्याप सकते हैं। मेरा भी उलट कर शाश्वत और नित्य हो गया। मैंने इसे तब समझा जब मैं जीवन-मृतक हो गया। कबीर कहता है, इस प्रकार सहज सुख में समा जाओ और न तो स्वयं डरो, न दूसरे को डराओ।

१०

शरीर के मरने पर जीव किस स्थान को जाता है और वह किस प्रकार अतीत अनाहत शब्द में रत हो जाता है? जो राम को जानते हैं वही इस तत्व को पहिचानते हैं जिस प्रकार गूँगा शक्कर खाकर मन में प्रसन्न होता है। मेरा ईश्वर (वनवारी) ऐसा ज्ञान कहता है—रे मन, तू सुषुम्णा नाड़ी में वायु को दृढ़ कर ऐसा गुरु कर कि फिर कोई गुरु न करना पड़े। तू ऐसे पद में रमण कर कि फिर अन्य पद में रमण न करना पड़े। तू ऐसा ध्यान धर कि फिर दूसरा ध्यान न धरना पड़े। तू इस प्रकार मर कि फिर कभी न मरना पड़े। गंगा पिंगला नाड़ी) को उलट कर तू यमुना (इडा नाड़ी) में मिला दे और बिना संगम-जल के तू मन ही मन में (अपनी अनुभूति में) स्नान कर। यह व्यवहार (संसार का प्रपंच) तो नर्क (लोचारक) के समान है। इस प्रकार तत्व का विचार कर लेने के अनंतर और क्या विचारने की आवश्यकता? जल, तेज, वायु, पृथ्वी और आकाश जैसे एक दूसरे के समीप रहते हैं, इसी प्रकार तू हरि के समीप रह। कबीर कहता है कि निरंजन ब्रह्म का ध्यान कर। तू ऐसे घर को जा, जहाँ से लौट कर फिर आना न हो।

११

जिस सुख के माँगने पर आगे दुःख आता है, वह सुख माँगते हुए हमें अच्छा नहीं लगता। अभी तक मेरी आत्मा को विषय-

वासना से सुख की आशा है। फिर राजा राम में निवास कैसे हो सकेगा ? जिस सुख से ब्रह्मा और शिव भी डरते हैं उसी सुख को हमने सच्चा सुख समझ लिया है। सनकादिक, नारद, मुनि और शेष ने भी इस शरीर में मन की वास्तविकता नहीं पहिचानी। हे भाई, इस मन को कोई खोजे कि यह शरीर छूटने पर कहाँ समा जाता है। श्री गुरु के प्रसाद से ही जयदेव और नामदेव इन्हींने भक्ति का प्रेम समझा है। इस मन का न तो कहीं आना होता है न जाना। इसके संबंध में जिसका भ्रम दूर हो जाता है, उसी ने सत्य पहिचाना है। इस मन का न कोई रूप है, न इसकी कोई रेखा है। यह (ब्रह्म की आज्ञा से ही) उत्पन्न होता है और उसी आज्ञा को समझ कर उसी में लीन हो जाता है। इस मन का रहस्य कोई बिरला ही जानता है। इसी मन में सुखदेव जी लीन हुए। समस्त शरीरों में केवल एक ही जीवात्मा है और इसी जीवात्मा में कबीर रमण कर रहा है।

१२

एक ही नाम जो रात्रि दिवस जाग रहा है, उसी से प्रेम कर कितने ही (साधक) सिद्ध हो गए ! साधक, सिद्ध और सभी मुनि अपनी-सी कर हार गए किंतु एक नाम का कल्पतरु ही उन्हें तारने में समर्थ हो सका। जो हरि करता है वही होता है, दूसरा नहीं। कबीर कहता है कि उसने तो राम का नाम पहिचान लिया है।

१३

हे जीव, तू निर्लज्ज है, तुझे (थोड़ी भी) लज्जा नहीं है। तू हरि को छोड़ कर क्यों किसी के पास जाता है ? जिसका स्वामी ऊँचा (सर्वशक्तिमान) है, वह दूसरे के घर जाते हुए शोभा नहीं देता। जो तू अपने स्वामी (की अनुभूति से) भरपूर रहेगा तो वह तेरे ही साथ रहेगा, तुझसे दूर नहीं। जिसके चरणों की शरण में स्वयं कमला (लक्ष्मी) है उसके भक्त के घर बोलो, क्या नहीं है ? सब कोई (समस्त

ब्रह्मांड) जिसकी बात कहते रहते हैं वही तो समर्थ है और दान करने वाला स्वामी है। कबीर कहता है, संसार में पूर्ण वही है जिसके हृदय में (हरि के अतिरिक्त) और कोई दूसरा (स्वामी, नहीं है।

१४

किसका पुत्र, किसका पिता, किसका कौन है? कौन मरता है, कौन दुःख देता है? यह हरि ही एक ऐंद्रजालिक है, और उसी ने संसार में यह माया फैला रक्खी है। हाय मैया, मैं उस हरि के वियोग में कैसे जी सकती हूँ। (इसे आत्मा का कथन मानना चाहिए।) किसका कौन पुरुष है और किसकी कौन स्त्री है? इस तत्व को शरीर रहते विचार लो। कबीर कहता है कि मेरा मन तो इसी ठग से माना है—(यही ठग मुझे पसंद आया है) जब मैं इस ठग को पहिचान लेता हूँ तो उसकी सारी ठग-विद्या (माया) मेरी आँखों से दूर हट जाती है।

१५

अब मुझे राजा राम की सहायता मिल गई है। जिस कारण मैंने जन्म और मरण (के पाश) काटकर परम गति प्राप्त की है। मैंने अपने को साधुओं की संगति में लीन कर लिया है। और पंच दूतों (इंद्रियों) से अपने को छुड़ा लिया है। मैं अपनी जिह्वा से अमृतमय नाम का जाप जपता हूँ और मैंने अपने को (प्रभु का) बिना मोल का दास बना लिया है। सतगुरु ने मुझ पर विशेष उपकार किया है। उन्होंने मुझे संसार-सागर से निकाल लिया है। उनके चरण-कमलों से मेरी प्रीति लग गई है और मेरे चित्त में गोविंद का दिनोंदिन निवास होता है। माया का जलता हुआ अंगार बुझ गया और नाम का सहारा होने से मन में संतोष हुआ। मेरे स्वामी प्रभु जल-थल में व्याप्त हो रहे हैं और जहाँ मैं देखता हूँ वहीं मुझे मेरे अंतर्यामी दीख रहे हैं। मैंने अपनी भक्ति स्वयं ही दृढ़ की है क्योंकि पूर्वजन्म के संस्कार मुझे

मिल गए हैं। कबीर का स्वामी ऐसा ग़रीब निवाज है कि जिस पर वह कृपा करता है वही परिपूर्ण हो जाता है।

१६

जल में छूत है, थल में छूत है और किरणों में भी (ग्रहण के अवसर पर) छूत है। जन्म में भी छूत है, और फिर मरने में भी छूत है। इस प्रकार तूने सूतक से जल कर (परज कर) अपना नाश कर लिया। कह तो रे पंडित, कौन पवित्र है? मेरा मित्र बन कर ऐसा ज्ञान गाता फिरता है! आँखों में भी छूत है (कहीं शूद्र की दृष्टि न पड़ जाय) बोली में छूत है (कहीं शूद्र से बात न हो जाय) और कानों में भी छूत है। (कहीं शूद्र की बात कान में न पड़ जाय)। उठते बैठते तुझे छूत लगती है। यहाँ तक कि भोजन में भी छूत पहुँच जाती है। इस प्रकार कर्म-बंधन में फँसने की विधि तो सभी कोई जानते हैं, मुक्त होने की विधि कोई एक ही जानता है। कबीर कहता है कि जो राम को हृदय में विचारते हैं उन्हें छूत नहीं लगती।

१७

हे राम, यदि तुम्हें अपने भक्त का ध्यान है तो एक झगड़ा सुलझा दो। यह मन बड़ा है या वह जिसमें मन अनुरक्त है? राम बड़ा है, या वह जो राम को जानता है? ब्रह्मा बड़ा है या वह जिसे उसने उत्पन्न किया है? वेद बड़ा है या वह जहाँ से वह उत्पन्न हुआ है? कबीर कहता है कि मैं (इस झगड़े से ही) उदास हो गया हूँ। (मैं पूछता हूँ) तीर्थ बड़ा है या हरि का दास?

१८

ए भाई, देखो ज्ञान की आँधी आई है। माया से बाँधी हुई यह भ्रम की सारी टट्टी उड़ गई है। द्विविधा की दो थूनियाँ (बोझ रोकने वाली खंभियाँ) गिर पड़ीं और मोह का बलेंडा (म्याल) टूट गया। तृष्णा की छानी पृथ्वी के ऊपर गिर पड़ी और दुर्बुद्धि का भांडा फूट

फूट गया। इस आँधी के बाद जो जल बरसा उसी से यह तेरा भक्त भीग गया। कबीर कहता है कि जब उदय होते हुए सूर्य को पहिचाना तो मन प्रकाशित हो उठा। (यहाँ सूर्य का तात्पर्य ब्रह्म-ज्ञान से है।)

१६

न हरि का यश सुनता है, न हरि का गुण गाता है। केवल बकवाद ही में आकाश को (पृथ्वी पर) गिराना चाहता है। ऐसे लोगों से क्या कहा जाय? जिन्हें प्रभु ने भक्ति से वर्ज्य कर रक्खा है, उनसे हमेशा डरते ही रहना चाहिए। स्वयं तो एक चुल्लू भर पानी नहीं दे सकते और उसकी निंदा करते हैं जिसने पृथ्वी पर गंगा बहा दी है। वे लोग उठते-बैठते कपट-चक्र चलाते हैं। स्वयं तो नष्ट होते ही हैं, दूसरों को भी नष्ट करते हैं। बुरी चर्चा को छोड़ कर और कुछ जानते ही नहीं हैं। स्वयं ब्रह्मा भी यदि कुछ कहे तो वे उसे नहीं मान सकते। स्वयं तो अपने को खोते हैं, दूसरों को भी खोते हैं। वे आग लगाकर स्वयं उस घर में सोते हैं। स्वयं तो काने हैं किंतु दूसरों पर हँसते हैं। उन्हें देखकर कबीर केवल लज्जित ही होते हैं।

२०

पितरों के जीवन-काल में उन पर श्रद्धा तो रही नहीं अब उनके मर जाने पर उनका श्राद्ध करते हैं! फिर बेचारे पितर भी क्या कुछ पाते हैं? (श्राद्ध की चीज़ें तो) कौवे और कुत्ते ही खाते हैं। कोई मुझे बतला भी तो दे कि कुशलता क्या है? कुशल कुशल करते तो सारा संसार नष्ट हो रहा है। (केवल कहने से ही) कैसे कुशलता हो सकती है? मिट्टी के देवी या देवता बनाकर उसके आगे जीवों का बलिदान करते हैं। तुम्हारे पितर तो ऐसे हैं कि अपनी कही हुई (माँगी हुई) चीज़ भी नहीं ले सकते। जो लोग निर्जीव की पूजा के लिए सजीव का बलिदान करते हैं उनके लिए अन्तिमकाल बहुत भयानक है। ये संसारी लोग तो राम-नाम की गति न जान सकने से भय में डूबे पड़े

हैं। देवी देवता को पूजते हुए घूमते तो हैं किंतु परब्रह्म को नहीं मानते। कबीर कहता है कि उनकी बुद्धि जाग्रत नहीं हुई और वे विषय-वासना में ही लिपटे पड़े हैं।

२१

जो जीते हुए मरता है और मर कर फिर जीवित हो उठता है उसे ही शून्य में समाया हुआ समझना चाहिए। और जो इस माया में निरंजन रूप होकर रहता है, वह फिर संसार-सागर (योनि रूप से) नहीं पाता। रामरूपी दूध को इस प्रकार मथना चाहिए कि गुरु के आदेशानुसार मन स्थिर रहे, तभी इस रीति से अमृत पिया जा सकता है। गुरु का बाण-वज्र कुशलता से हृदय वेध देता है जिससे उसके पद का अर्थ प्रकाशित हो उठता है। वह गुरु शक्ति (शाक्तमत) के अँधेरे में रस्सी के भ्रम से रहित होकर निश्चल रूप से शिव-स्थान (बनारस) में निवास करता है। वही बिना बाण के धनुष चढ़ा सकता है जिससे उसने हे भाई, यह संसार भेद रक्खा है। उसका शरीर दशों दिशा की अंतर्हित पवन (प्राणायाम) से आंदोलित होता रहता है और (ईश्वर से) उसकी अनुरक्ति का सूत्र जुड़ा रहता है। (उसी के उपदेश से) निर्विकार मौन में लीन मन शून्य में समा सकता है और द्विविधा और बुरी बुद्धि भाग जाती है। कबीर कहता है कि राम नाम में अनुरक्ति होने के कारण मैंने एक विचित्र अनुभव के दर्शन किए।

२२

हे वैरागी, पवन को उलट कर (प्राणायाम कर) शरीर के अंतर्गत छः चक्रों को (कुंडलिनी के द्वारा) वेध कर अपनी सुरति (आत्मा) में शून्य (ब्रह्म-रंध्र) के प्रति अनुराग उत्पन्न कर और जो (ब्रह्म) आता है, न जाता है, न मरता है न जीता है, उसे खोज। मेरे मन, तू उलट कर अपने आप में समा जा। गुरु की कृपा से तुझे दूसरी ही बुद्धि मिल गई नहीं तो तू अभी तक बेगाना ही था। जो जैसा मानते हैं उसके

अनुसार उन्हें पास रहने वाला ब्रह्म पास मालूम देता है। जिन्होंने ब्रह्म-रस का पान किया है, वे जानते हैं कि ओरी का जल उलट कर बरेडा (छानी) का जल हो जाता है (अर्थात् उनकी बाह्य इंद्रियाँ अन्तर्मुखी हो जाती है।) (हे मन) तेरे निर्गुण रूप का रहस्य किससे कहूँ ? (जो उसे समझ सके) ऐसा कोई विवेकी (ज्ञानवान) हा होगा। कबीर कहता है कि जो जैसा पलीता देता है, उसे उसी प्रकार की आग दीखती है।

२३

'सहज' की ऐसी विचित्र कथा है जो कही नहीं जा सकती। वहाँ न वर्षा है, न सागर, न धूप, न छाया, न उत्पत्ति और न प्रलय ही है। न जीवन है न मृत्यु, न वहाँ दुःख का अनुभव होता है न सुख का। वहाँ शून्य की जाग्रति और समाधि की निद्रा दोनों ही नहीं है। न वह तोली जा सकती है, न वह छोड़ी जा सकती है, न वह हलकी है, न भारी। उसमें ऊपर नीचे की कोई भावना नहीं है, वहाँ रात और दिन की स्थिति नहीं है। न वहाँ जल है, न पवन। और वहाँ अग्नि भी नहीं है। वहाँ तो एकमात्र सत-गुरु का साम्राज्य है। वह अगम है, इंद्रियों से परे है, केवल गुरु की कृपा से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है। कबीर कहता है कि मैं अपने गुरु की बलि जाता हूँ। उन्हीं की अच्छी संगति में मिलकर रहना चाहिए।

२४

हमारा राम एक ऐसा नायक (व्यापार करने वाला) है कि उसने सारे संसार को बनजारा (व्यापार करने वाला) बना दिया है। उस संसार ने पाप और पुण्य के दो बैल ख़रीदे और पवन (साँस) की पूँजी सजाई। उसने शरीर के भीतर तृष्णा की गोनि भर दी, इस प्रकार उसने अपना टांडा ख़रीदा। (उसे रोकने के लिए) काम और क्रोध-कर वसूल करने वाले हुए और मन की भावनाएँ डाकू बन

गईं। पंच तत्व मिलकर उससे अपना इनाम वसूल करते हैं, इस प्रकार टांडा (भवसागर) के पार उतरा। कबीर कहता है कि ऐ संतो सुनो, अब ऐसी परिस्थिति आ गई है कि घाटी (भक्ति-पथ) पर चढ़ते समय एक बैल (पाप) थक गया है। अब तुम अपनी (तृष्णा की) गोंनि फेंक कर आगे चल पड़ो।

२५

नैहर (पेवकड़ै) में क़ेवल चार दिन रहता है, फिर तो प्रियतम (साहुरड़ै) की सेवा में जाना होगा। यह बात अंधे लोग नहीं जानते क्योंकि वे मूर्ख और अज्ञानी हैं। प्रेयसी अपना साज-सामान बाँधकर खड़ी है। क्योंकि विदा कराने के लिए पाहुने आए हुए हैं। वहाँ जो तलाई (छोटी सरोवरी) दीख पड़ रही है, उससे पानी लेने के लिए किस रस्सी की आवश्यकता है? (अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान के स्रोत का जल लेने के लिए किसी ग्रंथ-रूपी रस्सी की आवश्यकता नहीं है।) यदि उसी क्षण रस्सी टूट जाय तो पनिहारी (आत्मा) उठ कर चली जाती है। यदि स्वामी कृपा करे और दयालु हो जाय तो अपना सारा कार्य सँवर जाय। सौभाग्यशालिनी तो उसे ही समझना चाहिए जो गुरु के शब्द का विचार करे। (अन्य स्त्रियाँ तो) कर्म-बंधन (किरत) में बँधी हुई हैं, उसी में वे घूमती फिरती हैं और उसी प्रकार की बातें कहती हैं, वे बेचारी क्या करें! (परिणाम यह होता है कि) कि वे निराश होकर (इस संसार से) चल खड़ी होती हैं और उनके चित्त में किंचित् भी धैर्य नहीं रहता। कबीर की शरण में जाकर हरि के चरणों से लगो और उसका भजन करो।

२६

योगी कहते हैं कि योग ही अच्छा और श्रेयस्कर है, और कोई दूसरा (संप्रदाय) ठीक नहीं है। रुंडित और मुंडित (जिन्होंने शरीर और सिर के बाल मुड़ा लिए हैं) और एक शब्द में विश्वास रखनेवाले

यही कहते हैं कि हम लोगों ने सिद्धि प्राप्त कर ली है। (परन्तु सच बात यह है कि) हरि के बिना सभी अज्ञानी लोग भ्रम में भूले हुए हैं। अपने को मुक्त कराने के लिए जिस किसी की शरण में जाओ वही अनेक बंधनों में बँधा हुआ है। उनकी (बतलाई हुई) विधि तो जहाँ से उत्पन्न हुई थी, वहाँ ही समा गई और उसी समय विस्मृत हो गई। फिर भी पंडित, गुणी और शूरवीर तो यही कहते हैं कि हम ही (ज्ञान का) दान करने वाले हैं और हम ही बड़े हैं। (यों तो) जिसे समझाओ वही समझता है और बिना समझे संसार में रहता कौन है? (किंतु) सतगुरु के मिलने से ही अंधकार से बचा जा सकता है और (उसकी बतलाई हुई) इन्हीं रीतियों से ज्ञान का माणिक प्राप्त होता है। दाहने और बाएँ विकारों को छोड़ कर (यहाँ वहाँ की बातों में न उलझ कर) सीधे हरि के चरणों में दृढ़ता-पूर्वक रहना चाहिए। कबीर कहता है कि जब गूँगा गुड़ खा लेता है तो पूछने पर वह क्या कह सकता है! (इसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञान का अनुभव करने वाला क्या बतलाए कि उसकी अनुभूति क्या है!

२७

(शरीर के नष्ट होने पर) जहाँ जो कुछ था वहाँ अब कुछ नहीं है—पाँच तत्व भी वहाँ नहीं रह गए। ऐ बंदे, मैं पूछता हूँ कि इडा, पिंगला और सुषुम्णा ये (नाड़ियाँ) आवागमन में कहाँ चली जाती हैं? तागा (साँस) टूटने पर आकाश (ब्रह्म-रंध्र) नष्ट हो जाता है। फिर यह तेरी बोलने की शक्ति कहाँ समा जाती है? यही संदेह मुझे प्रतिदिन कष्ट देता है और मुझे कोई समझा कर नहीं कहता। (इस माया में) जहाँ न तो ब्रह्मांड है, न पिंड और निर्माणकर्त्ता भी नहीं है। (समस्त सृष्टि को) जोड़ने वाला तो सदा अतीत है। फिर यह अतीत कहो किसमें रहता है। विनाश होने के पूर्व तक न तो (तेरे) जोड़ने से कुछ जुड़ेगा और न (तेरे) तोड़ने से कुछ टूट ही

सकेगा। फिर कौन किसका स्वामी है, कौन किसका सेवक है और कौन किसके पास जाता है? कबीर कहता है मेरी तो ब्रह्म से लव लग रही है और मैं दिन-रात वहीं निवास करता हूँ। उसका रहस्य तो केवल वही जानता है क्योंकि एक वही अविनाशी है।

२८

श्रुति और स्मृति ही मुझ योगी के कर्णी (कान का आभूषण) और मुद्रा (कानों में पहनने का स्फटिक कुंडल) है और समस्त बाहर का घेरा (क्षितिज) ही मेरा पहनने का वस्त्र (खिंथा) है। मेरा उठना-बैठना शून्य गुफा (ब्रह्म-रंध्र) ही में है और मेरा संप्रदाय कर्मकांड (कलप) से रहित है। मेरे राजन्, मैं ऐसा बैरागी और योगी हूँ जिसकी शोक से रहित होने के कारण, मृत्यु नहीं होती। ब्रह्मांड और उसके खंड मेरी सिंगी (सींग की तुरही) है और पृथ्वी (महि) मेरा बटुवा है; सारा संसार ही भस्म से परिपूर्ण है। भूत, वर्तमान और भविष्य इन तीन क्षणों में ही मेरी ताड़ी (त्राटक) लगी हुई है। और इन तीनों को पलटने में ही (भविष्य को वर्तमान या भूत, भूत को वर्तमान या भविष्य, वर्तमान को भूत या भविष्य) इन बधनों से छूटता हूँ और सर्वव्यापी हो जाता हूँ। युगों युगों से सरस्वती ने जिसे सजाया है ऐसे मन और पवन को मैंने अपना तूँबा बना लिया है। इससे मेरी शरीर की तंत्री स्थिर हो गई और अनाहत नाद की जो वीणा बजी उसका स्वर कभी नहीं टूटा। इसे सुन कर सुनने वालों के मन आनंद से परिपूर्ण हो गए और माया अस्थिर हो उठी। कबीर कहता है कि (मेरे सदृश) जो बैरागी खेल जाता है (अपने जीवन में ऐसे प्रयोग करता है) उसका आवागमन छूट जाता है।

२६

नौ गज, दस गज और इक्कीस गज की एक पुरिआ तानी गई (अर्थात नरी पर बाने और बाने को बुनने से पहले फैलाया। यहाँ

नौ गज और दस गज बाने के लिए और इक्कीस गज ताने के लिए मानना चाहिए।) उस पुरिया के फैलाव में साठ सूत रक्खे गए और उसमें नव खंड डालकर राछ के द्वारा बहत्तर भाग किए गए। इस प्रकार इस करघे पर बहुत वस्त्र लगा। यह वस्त्र बिनवाने के लिए (माँ) चली। लेकिन जुलाहा घर छोड़कर जा रहा है। (उसका कारण यह है कि) न तो कपड़ा करघे के वेलन पर लिपटता है और न वह मोर—(लकड़ी की कमचियों के सहारे) आदि से ठीक तरह सधा ही रहता है क्योंकि अधिक माँड़ लग जाने से ढाई सेर कपड़ा पाँच सेर हो गया है। (यदि बुनने की सुविधा के लिए माँड़ कम लगाया जाय और) ढाई सेर को पाँच सेर न किया जाय तो वह झगड़ालू स्त्री झगड़ा करने लगती है। (वह झगड़ा इसलिए करती है कि यदि मेरा कपड़ा अधिक भारी होगा—वास्तव में हो ढाई सेर ही लेकिन यदि वह पाँच सेर के वजन का हो जाय तो पैसे अधिक मिलेंगे लेकिन वेचारे जुलाहे की मुसीबत यह है कि यदि वह कपड़ा भारी करने के लिए माँड़ अधिक लगता है तो या तो कपड़ा करघे में नहीं लिपटता या कोशिश करने पर भी खिंचाव में झोल आ जाता है। सूत का फैलाव तुला नहीं रहता।) फिर कहीं दिन को भी बैठकर बुना जाता है? दिन का बाज़ार (बैठ या पैठ) है जहाँ अच्छे अच्छे ख़रीद करने वाले मालिक आते हैं उनसे ही बरकत होती है। यह कोई वक्त है कपड़े बुनने का? इस समय यहाँ क्यों कपड़ा बुनवाने के लिए आई है? (प्रातःकाल कपड़े बुनने का अच्छा समय होता है।) फिर पास रक्खा हुआ पानी का यह कूँडा भी फूटगया जिससे सारी पुरिया भीग गई। इसीलिए जुलाहे को गुस्सा आ गया। फिर बाने को बुननेवाली जो ढरकी (Shuttle Cock) है वह भी ख़राब हो गई है। या तो उससे तागा ही नहीं निकलता या यदि निकलता है तो उलझकर रह जाता है। (फिर जुलाहे को झुँझलाहट क्यों न हो?) कबीर कहता है कि ऐ

पगली ! (बेचारी) तू यह सारा पसारा छोड़कर जीवन बिता।

३०

एक (आत्मा की ज्योति उस (एक परब्रह्म की) ज्योति से मिल गई। अब और कुछ हो अथवा न हो। जिस घट (शरीर) में राम-नाम की उत्पत्ति नहीं होती वह घट फूट कर नष्ट हो जाय तो अच्छा है। ऐ सुन्दर साँवले राम, मेरा तुझमें अनुरक्त हो गया है। साधु मिलने से ही सिद्धि होती है इसमें चाहे योग हो या भोग हो। इन दोनों के संयोग से ही राम-नाम से संयोग हो सकता है। लोग समझते हैं कि (जो कुछ मैं कह रहा हूँ) यह एक साधारण गीत है, किंतु वस्तुतः यह ब्रह्म-विषयक विचार है जो काशी में मनुष्य को मरते समय दिया जाता है। गाने वाला और सुनने वाला चाहे जो कोई हो, लेकिन तू हरि के नाम से चित्त लगा। और ऐसा करने में—कबीर कहता है कि—परम गति की प्राप्ति में कोई संदेह नहीं रह जाता।

३१

जिन्होंने (अपने बचने का) यत्न किया, वे सब डूब गए। इस प्रकार भव-सागर को वे लोग पार नहीं कर सके। कर्म, धर्म और अनेक संयम करते हुए अहंकार की बुद्धि ने उनका मन जला दिया। जो साँस और भोजन का देने वाला स्वामी है उसे तूने मन से क्यों भुला दिया? तेरा जन्म हीरा और लाल (जैसे अलभ्य रत्नों) की भाँति अमूल्य है, उसे तूने कौड़ी (साधारण ममता और मोह) के बदले दे रक्खा है! तुझे तृष्णा, तृषा भूख और भ्रम कष्ट देते हैं किंतु इन कष्टों का विचार तू हृदय में नहीं करता। तेरे मन में केवल मतवाला मान ही रह गया, तूने गुरु के शब्दों को कभी हृदय में धारण नहीं किया। स्वाद से आकर्षित होकर इंद्रियों ने तुझे रस की ओर प्रेरित कर दिया और तू विकार से भरे हुए यौवन का रस लेता फिरता है। कर्मकांड से तू (बुरे) संतों के संग में केवल लोह और काष्ठ की माला (और साधुओं

के आभूषण आदि ही) हृदय में धारण करता है। अनेक योनि और जन्मों में भ्रमित होकर भागते हुए हम थक गए और दुःख सहन करते हुए भी अब हम शिथिल हो गए। कबीर कहता है कि अब तो गुरु के मिलने से ही महारस (ब्रह्मानंद) मिलेगा और प्रेम-भक्ति के सहारे इस (भव-सागर) से निस्तार होगा।

३२

कच्चे भराव की तरह यह पागल मन ऐसी हस्तिनि है जिसने अपनी गति में ईश्वर की रचना कर डाली है। (अथवा हे पागल मन! कच्चे भराव की तरह यह शरीर की हस्तिनि ऐसी है जिसने अपनी बुद्धि के विकास में स्वयं ईश्वर की सृष्टि कर डाली है) और काम-वासना के हाथी उसके वश में इस प्रकार आ गए हैं कि अंकुशों की मार सिर पर सहन करते हैं (लेकिन हटते नहीं।) हे पागल मन, तू विषय-वासनाओं से बच और समझ कर हरि से प्रेम कर। निर्भर होकर हरि का भजन न करने से राम रूपी जहाज़ पकड़ में नहीं आता। हे पागल मन, तूने हाथ पसार कर (विषय-वासनाओं को उसी प्रकार मुट्ठी में पकड़ लिया है जिस प्रकार बंदर (सकरे मुँह के बरतन में से) अनाज मुट्ठी में भर कर निकालना चाहता है। लेकिन छूटने में कठिनाई होने से (वह पकड़ा जाता है और) घर घर के दरवाज़े नाचता फिरता है। हे पागल मन, माया का व्यवहार तो जैसे (सेमर की) नलनी है जो (देखने में अत्यंत आकर्षक है किंतु भीतर रुई भरी रहने के कारण रस-हीन है) सुग्गे को आकर्षित कर लेती है। और उस माया का विस्तार उसी प्रकार है जैसे कुसुंभी रंग का जो पानी पड़ते ही फैलता जाता है। हे पागल मन, तूने स्नान करने के लिए अनेक तीर्थ बनाए और पूजने के लिए बहुत से देवताओं को बनाया। लेकिन कबीर कहता है कि हे पागल मन, इनसे तू संसार से मुक्त नहीं हो सकता। तुझे मुक्ति तो हरि की सेवा से ही मिल सकती है।

३३

(राम-नाम का धन इस प्रकार है कि) न तो उसे अग्नि जलाती है, न वायु अपने में लीन करता है और न चोर उसके समीप आ सकता है। इसलिए राम-नाम के धन को संचित करना चाहिए, क्योंकि वह धन कहीं नहीं जा सकता। हमारा धन तो माधव, गोविंद और धरणीधर है। इसी को वास्तव में धन कहना चाहिए। जो सुख गोविंद प्रभु की सेवा में मिलता है, वह सुख राज्य (करने) में भी नहीं प्राप्त हो सकता। इस धन के लिए शिव सनक आदि खोजते-खोजते वीतरागी हो गए! यदि मुकुंद को मन मान लिया जाय और नारायण को जिह्वा, तो यम का बंधन किसी प्रकार भी (गले में) नहीं पड़ सकता। मेरे गुरु ने ज्ञान और भक्ति का धन मुझे दिया इस कारण उनकी सुबुद्धि में ही मेरा मन लग गया। जो मन स्वयं तो (विषय-वासनाओं में) जल रहा है किंतु (ईश्वर-ज्ञान रूपी) जल-थंभन के लिए दौड़ रहा है। (अर्थात् विषय-वासनाओं में जलते हुए भी ईश्वर की अनुभूति रूपी शीतल जल को आने से रोक रहा है) उसका भ्रम-बंधन का भय भाग गया। (अर्थात् वह संसार में ही लीन हो गया।) कबीर कहता है कि ऐ कामदेव के मद से उन्मत्त (मनुष्य), तू अपने हृदय में विचार कर देख। तेरे घर में लाखों और करोड़ों घोड़े और हाथी हैं। (तुझे इतना सुख नहीं है जितना मुझे है क्योंकि) मेरे घर में केवल एक मुरारी ही हैं।

३४

जिस प्रकार बंदर है जो हाथ की मुट्ठी चनों से भर लेता है और लोभ से नहीं छोड़ सकता, उसी प्रकार यह मनुष्य है। वह लालच से तरह तरह के काम करता फिरता है और उन्हीं के अनुसार बार बार बंधन में पड़ता है। इस प्रकार भक्ति के बिना उसका जीवन व्यर्थ ही

गया। साधु-संगति और भगवत्-भजन बिना उसके लिए कहीं भी सुख नहीं रह सका। जिस प्रकार उद्यान में फूल फूलते हैं और उनकी सुगंधि कोई नहीं लेता। (काल उन्हें नष्ट कर देता है।) उसी प्रकार जीव अनेक योनियों में भ्रमण करता है और काल बार बार उन्हें नष्ट करता है। यह धन, यौवन, पुत्र और स्त्री केवल दृश्य-मात्र के रूप में मनुष्य को दिये गए हैं। उन्हीं में यह मनुष्य अटक कर उलझ गया है, वह इंद्रियों से प्रेरित जो हो गया है। जीवन की अवधि ही अग्नि है, और यह शरीर जिसका चारों ओर से शृंगार किया गया है एक तिनके का महल है (जो पल भर में जल जायगा।) कबीर कहता है कि भव-सागर पार करने के लिए मैंने सतगुरु की शरण ली है।

३५

मैले पानी और उज्ज्वल मिट्टी से इस शरीर की प्रतिमा बनाई गई है। न मैं कुछ हूँ और न कोई चीज़ ही मेरी है। यह शरीर, यह संपत्ति और यह समस्त आनंद हे गोविंद, तेरा ही है। इस मिट्टी में पवन का समावेश किया और गोविंद ने यह माया-प्रपंच चलाया है। कुछ लोगों ने असंख्य धन का संचय किया है किन्तु अंत में उनकी भी कपाल-क्रिया मिट्टी के घड़े फोड़ने की भाँति की गई। कबीर कहता है कि अंत में ओसारे में (मकान से हटकर) [खुदे हुए गढ़े (नींव) में उसका अत होता है] और वह अहंकारी क्षण भर में नष्ट हो जाता है।

३६

ऐ जीव, राम को इस भाँति जपो जिस भाँति ध्रुव और प्रह्लाद ने हरि का जाप किया था। हे दीनदयालु, मैंने एकमात्र तेरे भरोसे अपने समस्त परिवार को जहाज़ पर चढ़ा लिया है। (अब इस भव-सागर से तू ही पार लगा।) तू जिससे चाहे उससे अपनी आज्ञा मनवा किंतु इस जहाज़ को तू पार लगा दे। गुरु के प्रसाद से मेरे हृदय में ऐसी बुद्धि

समा गई है कि मैं आवागमन से रहित हो गया हूँ। कबीर कहता है कि एक सारंगपाणि (राम) का ही तू भजन कर। भव-सागर के इस पार और उस पार सभी जगह वही एक दानी है।

३७

(पिछली) योनि को छोड़कर जब मैं इस जग में आया तो इस संसार की हवा लगते ही मैं अपने स्वामी को भूल गया। अतः हे जीव, तू हरि के गुण गा। (यह आश्चर्य तो देख कि) तू गर्भ-योनि में ऊपर (मुख किए हुए) तप करता था। फिर भी जठराग्नि से तू सुरक्षित रहा। तू चौरासी लक्ष योनियों में घूम कर आया है। (अब तू ऐसा भजन कर कि) इस योनि से छूट कर तुझे किसी और जगह न जाना पड़े। कबीर कहता है कि तू सारंगपाणि (राम) का भजन कर जो न आते हुए दीखता है और न जाते हुए ज्ञात होता है। (अर्थात् जो सदैव स्थिर और चिरंतन है।)

३८

न तो स्वर्ग-निवास की अभिलाषा करना चाहिए, न नर्क-निवास से डरना चाहिए जो कुछ होना होगा, वह तो होगा ही मन में आशा ही क्यों की जाय? (केवल) राम का गुण गाना चाहिए जिससे परम-पद की प्राप्ति हो। जप क्या है? तप क्या है? संयम क्या है? व्रत और स्नान क्या है? जब तक कि भगवान के भक्ति-भाव की युक्ति न जानी जाय! न तो संपत्ति देखकर प्रसन्न होना चाहिए और न विपत्ति देख कर रोना चाहिए। जैसी संपत्ति है, वैसी ही विपत्ति है। और होगा वही जो ईश्वर द्वारा निर्दिष्ट है। कबीर कहता है कि अब मुझे ज्ञात हो गया कि वह (ब्रह्म) संतों के हृदय के भीतर है। वस्तुतः सेवक वही है और सेवा उसी की अच्छी है जिसके हृदय में मुरारि (ब्रह्म) निवास करते हैं।

३९

रे मन, तेरा कोई नहीं है, तू व्यर्थ ही (औरों का) भार मत खींच। यह संसार तो वैसा ही है जैसा पक्षी का वृक्ष-बसेरा। मैंने तो राम-रस पी लिया है जिससे संसार की विषय-वासना के, अन्य रस भूल गए हैं। दूसरों के मरने पर रोने से क्या लाभ ? जब स्वयं अपनी स्थिरता नहीं है। जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह अवश्य नष्ट होगी। इसलिये (मैं क्यों रोऊँ ?) मेरी बलाय दुखी होकर रोय ! जहाँ जैसी सृष्टि है ब्रह्म ने वैसी ही (अवस्था के अनुकूल) उसकी रचना की है। किन्तु लोग उसका (अनुचित रूप से) रस पीने में लगे हुए हैं। कबीर कहता है कि हे बैरागी, तू अपने चित्त में जागृति लाकर राम का स्मरण कर (अथवा कबीर कहता कि हे चित, तू चैतन्य होकर वीतराग से राम का स्मरण कर।)

४०

कामिनी आँखों में आँसू भर कर और लम्बी साँस लेकर (अपने स्वामी का) मार्ग देख रही है। न तो (अधिक अश्रुओं से) उसका हृदय भीगता है। (इस डर से कि अधिक अश्रुओं से नेत्र-ज्योति धूमिल न पड़ जावे) और न अपने स्थान से उसका पैर हटता है, (न कहीं जाती है, इस डर से कि न जाने कब उसके स्वामी उसे दर्शन देने चलें आवें) उसे तो एकमात्र अपने (स्वामी) हरि के दर्शन पाने की आशा है। ए काले काग, तू क्यों नहीं उड़ जाता ? जिससे मुझे अपने प्यारे राम शीघ्र ही मिल जावें ? कबीर कहता है कि जीवन के मोक्ष के लिये हरि की भक्ति करनी चाहिये। एक नारायण के नाम का आधार ही लिया जाय और जिह्वा से राम में ही रमण किया जाय (या जिह्वा से राम-नाम ही उच्चारण किया जाय।

४१

आस-पास तुलसी के घने वृक्ष हैं। बीच में बनारस गाँव है।

इसका सौंदर्य देख कर (परमात्मा रूपी) ग्वालिनि मोहित हो गई है। (कबीर कहते हैं कि ऐ ग्वालिनि, तू यहीं निवास कर) मुझे छोड़ कर कहीं भी आना-जाना छोड़ दे। हे (प्रभु) सारंगधर, मेरा मन तुम्हारे ही चरणों में लग गया है। तुम तो उसी को मिलते हो जो परम सौभाग्यशाली है। यों तो समस्त वृंदावन के मन को हरने वाले कृष्ण गोपाल गायें चराते हुए (ईश्वर माने जाते हैं) किन्तु ऐ सारंगधर, तुम जिसके स्वामी हो, वह मैं हूँ और मेरा नाम कबीर है।

४२

कितनों ही ने बहुत से वस्त्र पहिन रक्खे हैं और कितनों ही ने वन में वास कर लिया है किंतु ऐ मनुष्य, ईश्वर से धोखा करने में तुम्हें क्या मिला? जल में अपना शरीर डुबाने से तुम्हें क्या लाभ हुआ? ऐ जीव, मैं जानता हूँ कि तू नष्ट होगा। अरे मूर्ख, अविगत (ब्रह्म) को समझ। मैंने जहाँ जहाँ देखा फिर वहाँ दूसरी बार दृष्टि भी नहीं की क्योंकि (सभी) माया के साथ लिपटे हुए हैं। ज्ञानी, ध्यानी तो बहुत उपदेश करने वाले हैं और यह सारा संसार एक प्रपंच ही है। कबीर कहता है कि एक राम-नाम के बिना यह संसार माया से अंधा हो रहा है।

४३

रे मन, तू अपना भ्रम छोड़ दे और निस्संकोच होकर प्रकट रूप से कार्य कर। (समझ ले कि) तू इस माया से दंडित किया गया है। क्या शूरवीर कभी सम्मुख संग्राम से डरता है? या सती स्त्री क्या कभी (भंडार) संपत्ति का संचय करती है? रे पागल मन, तू अपनी अस्थिरता छोड़ दे। जब तूने अपने हाथ में (सत्य-व्रत) का सिंधौरा ले रक्खा है तब अपने को जला कर समाप्त कर देने में ही तुझे सिद्धि मिलेगी। संसार काम, क्रोध और माया से ग्रसित होकर इसी प्रकार असमंजस या अड़चन में पड़ा हुआ है। इसलिए कबीर कहता है कि उच्चातिउच्च

राम को मैं कभी नहीं छोड़ूँगा।

४४

तेरा आज्ञा-पत्र मेरे सिर-माथे है। उस पर फिर मैं क्या विचार करूँगा ? तू ही नदी है, तू ही कर्णधार है और तुझी से मेरा निस्तार होगा। ऐ बंदे, तेरा अधिकार तो केवल वंदना करने में ही है। स्वामी चाहे क्रोध करे या प्यार करे। तेरा नाम ही मेरा आधार है। (इसका परिणाम यह होगा कि) आग भी फूल की भाँति हो जायगी। कबीर कहता है कि मैं तो तुम्हारे घर का गुलाम हूँ। चाहे मारो, चाहे जिलाओ।

४५

चौरासी लाख जीवों की योनियों में भ्रमण करते हुए नंद (कृष्ण का पिता) बहुत थक गया। उस बेचारे का बहुत बड़ा भाग्य था कि (उसके घर में) भक्तों के लिए अवतार लिया गया। तुम जो (कृष्ण को) नंद का पुत्र कहते हो तब (मैं पूछता हूँ कि) नंद किसका पुत्र था ? जब पृथ्वी, आकाश और दसों दिशाएँ नहीं थीं तो यह नंद कहाँ था ? वस्तुतः 'निरंजन' तो उसी का नाम है जिस पर न तो संकट पड़ते हैं और न जो योनियों में भ्रमण करता है। कबीर का स्वामी तो ऐसा देवता है जिसके न माता है और न पिता।

४६

ऐ लोगों, मेरी निंदा करो, मेरी निंदा करो। निंदा तो भक्त को बहुत प्यारी है। उसके लिए तो निंदा ही पिता है और निंदा ही माता। यदि निंदा होती है तो (समझ लो कि) वैकुंठ जाना (निश्चित) है और नाम के तत्व को मन में स्थान देना भी (निश्चित) है। यदि निंदा होती है तो हृदय शुद्ध हो जाता है। (दूसरे शब्दों में) हमारे (मैले) कपड़े (मानों) निंदक ही धोता है। जो निंदा करता है वह हमारा मित्र है। और उसी निंदक में हमारा चित्त (निवास करता)

है। निंदक वही है जो निंदा स्पर्धा के साथ, होड़ लगा कर करे। तभी तो निन्दक हमारा जीवन नम्र बनाता है। भक्त कबीर के लिए तो (एकमात्र) निन्दा ही सार रूप है। क्योंकि (अंत में) निंदक तो डूब जाता है और हम पार उतर जाते।

रागु आसा

१

श्री गुरु के चरणों का स्पर्श करके मैं विनय करता हूँ और पूछता हूँ कि मैंने यह प्राण क्यों पाये हैं ? यह जीव संसार में क्यों उत्पन्न और नष्ट होता है ? कृपा कर मुझे समझा कर कहिए। हे देव, दया करके मुझे सन्मार्ग पर लगाइए जिससे भय का बंधन टूट जाय और (मैं) जन्म-मरण के दुःख से, फिर कर्म के (मिथ्या) सुख से और जीव की योनियों से छूट जाऊँ। मेरा मन माया-पाश के बंधन को नष्ट नहीं करता और शून्य को पाने की चेष्टा नहीं करता। अपने आत्म-पद निर्वाण को नहीं पहिचानता और इस प्रकार ढीठ होने से नहीं चूकता। उससे जो कुछ भी कहा जाता है, वह प्रतिफलित नहीं होता और यदि प्रतिफलित होता भी है तो वह उसको जानता नहीं है, इस प्रकार भाव और अभाव दोनों से रहित है। उदय (उत्पन्न होने) और अस्त (नष्ट होने) की बुद्धि मन से नष्ट हो गई है फिर भी वह (मन) सदैव अपनी स्वाभाविक (कलुषित) मनोवृत्तियों में लीन रहता है। (आपकी कृपा से) जब प्रतिबिंब (जीवात्मा) बिंब (परमात्मा) में मिल जायगा और यह जल से भरा हुआ घड़ा (शरीर) नष्ट होगा तब, कबीर कहता है, (तुम्हारे) ऐसे गुण से भ्रम भाग जायगा और तभी मन शून्य में लीन हो जायगा।

२

(बनारस के संतों का वर्णन करते हुए कबीर कहते हैं—) साढ़े

तीन-तीन गज़ की धोती पहने हुए, पैरों में तिहरे तागे लपेटे हुए, गले में जपमाला डाले हुए और हाथ में लोटे लिए हुए इन कम्बख़्तों को हरि के संत नहीं कहना चाहिए। ये लोग तो बनारस के ठग हैं। मुझे ऐसे संत अच्छे नहीं लगते जो टोकरे भर-भर के पेड़ा गटक जाते हैं। बर्तन माँज कर ऊपर खाना खाते हैं (कि कहीं किसी की भोजन पर छाया न पड़ जाय) और लकड़ी धो कर जलाते हैं। पृथ्वी को खोद कर दो चूल्हे बनाते हैं और फिर सब आदमी मिल कर खाते हैं। वे पापी (अपराध करके) अपराधी बने हुए सदा (यहाँ से वहाँ) घूमते रहते हैं और मुख से ही वे एक दूसरे को अछूत कहते हैं। (अर्थात् किसी का मुख ही देखकर वे छूत मान लेते हैं और स्नान करते हैं।) इस प्रकार वे अभिमानी हमेशा फिरते रहते हैं और अपने सारे कुटुम्ब को (अपने साथ ही पाप में) डुबाते हैं। वे जहाँ से (द्रव्य आदि) लाते हैं, वह (उसी प्रकार से वहीं या वैसे ही कामों में) नष्ट हो जाता है और वे उसी के अनुसार कर्म भी करते फिरते हैं। कबीर कहता है, (बनारस के इन संतों को छोड़कर) जो सतगुरु से भेंट करता है वह फिर जन्म लेने के लिए (संसार में) नहीं आता।

३

मेरे पिता ने मुझे आश्वासन दिया। मुझे सुखदायक सेज दी और मुख में अमृत (के समान भोजन) दिया। उस पिता को मैं अपने मन से कैसे भुला दूँ? मैं न (इस मर्यादा के) आगे जाऊँगा और न अपनी बाज़ी हारूँगा। (न जीवन में असफल होऊँगा।) मेरी माता मर गई किंतु मैं फिर भी सुखी हूँ। मैं दगली (मोटे वस्त्र की अँगरखी) भी नहीं पहनता फिर भी मुझे पाला (ठंड) नहीं लगता। (अर्थात् पिता के दुलार ने माँ के अभाव की पूर्ति कर दी है।) मैं उस पिता की बलि जाता हूँ जिनसे मैं उत्पन्न हुआ हूँ। उन्होंने पंच (इंद्रियों) से मेरा साथ छुड़ा दिया है। अब मैंने पंच (इंद्रियों के विष) को मार कर पैरों के नीचे

दबा दिया है और हरि-स्मरण ही में मेरा तन और मन भीन रहा है ! हमारा पिता बहुत बड़ा गोसांई (अतीत या जितेंद्रिय) है। मैं (पापी) उस पिता के पास क्योंकर (किस प्रकार) जाऊँ ? यदि मुझे सतगुरु मिल जायँ तो वे मेरा पथ-प्रदर्शन कर देंगे विशेष रूप से जब जगत-पिता मेरे मन को अच्छे लगने लगे हैं। (हे पिता) मैं तुम्हारा पुत्र हूँ और तुम मेरे पिता हो। एक ही स्थान पर हम दोनों निवास करते हैं। किंतु सेवक कबीर ने तो दोनों को (अपने को और पिता को) एक ही समझ रक्खा है क्योंकि गुरु के प्रसाद से मुझे सब कुछ ठीक तरह से दीखने लगा है।

४

(यह माया का वर्णन है।) एक पात्र या पत्तल भर खाने के टुकड़े (उरकट-कुरकट) और एक पात्र भर पानी है। उसे खाने के लिए चारों ओर से पंच जोगी बैठे हैं और बीच में एक नकटी रानी है। (तात्पर्य यह कि केवल एक शरीर है और उसका उपभोग करने के लिए पाँच इंद्रियाँ हैं और बीच में माया है।) वाह (हूँ) इस नकटी का नीख़रा बहुत बढ़ गया है ! किसी विवेकी (ज्ञानवान) को तो तूने नहीं काटा ? इस नकटी (मर्यादा-हीन) माया का निवास सभी स्थानों में है और इसने सभों का शिकार (अहेर) कर मार डाला है। यह (माया) सब संसार की बहन और भांजी बन कर बैठी है (जिसके सभी लोग पैर पड़ते हैं।) किंतु जिन लोगों ने इसे वरण करके स्त्री बना लिया है उनकी यह दासी हो गई है। हमारा स्वामी (गुरु) बहुत विवेक-पूर्ण है और स्वयं संत-रूप से प्रसिद्ध है। वही हमारे माथे पर स्थित है। (अर्थात् रक्षक है।) हमारे निकट (उसे छोड़ कर) और कोई नहीं आ सकता। (मेरे गुरु ने उस माया की) नाक काट ली ? कान काट लिए और उसे नष्ट-भ्रष्ट करके टाल दिया है। कबीर कहता है, यह तीनों लोकों की प्रियतमा (माया) संतों की परम शत्रु है।

५

योगी, यती, तपस्या करने वाले और संन्यासी अनेक तीर्थों में भ्रमण करते हैं। वे लुंजित (लुंचित—जिनके शरीर के केश उखाड़ लिए गए हैं।) अथवा मुंजित (मूंज की मेखला पहने हुए हैं।) या मौन होकर जटा रखाए हुए हैं किन्तु (इतना सब होते हुए भी) अंत में उन्हें मरना पड़ता है। इसलिए (केवल) राम की सेवा करनी चाहिए। जिसकी जिह्वा में राम-नाम का प्रेम है उसका यम क्या कर सकता है? जो लोग शास्त्र, वेद, ज्योतिष और अधिक से अधिक व्याकरण जानते हैं, और जो लोग तंत्र, मंत्र और सभी औषधियाँ पहिचानते हैं, उन्हें भी अंत में मरना पड़ता है। जिन लोगों को राज्य का उपभोग प्राप्त है; छत्र, सिंहासन और अनेक सुन्दर स्त्रियों का संग सुलभ है और पान, कपूर और सुगंधित चंदन उपलब्ध है, उन्हें भी अंत में मरना पड़ता है। मैंने वेद, पुराण और सभी स्मृतियाँ खोज डालीं, किसी के द्वारा भी उद्धार नहीं हो सकता इसलिए कबीर कहता है, केवल इस राम का जाप करो जिससे तुम अपना जन्म और मरण मिटा सको।

६

हाथी रबाब बजाता है, बैल पखावज और कौआ ताल (या करताल) बजाता है। गधा लंबा वस्त्र पहन कर नाचता है और भैंसा भक्ति करता है। राजा राम ने ककड़ी के बड़े पकाये हैं। किन्हीं (वास्तव में) समझने वाले ने उन्हें खाए हैं। सिंह घर में बैठ कर पान लगा रहा है, घीस (बड़ा चूहा) उन पानों की गिलौरियाँ ला रहा है। चूहे का बच्चा घर घर में मंगल गा रहा है और कछुआ शंख बजा रहा है। यह सब उत्सव इसलिए हो रहा है कि उच्च कुलोद्भव पुत्र (जीवात्मा) विवाह करने के लिए चला आ रहा है और उसके लिए सोने का मंडप (शरीर) छाया गया है। वेदी पर परम सुन्दर कन्या

(माया) है जिसका गुण खरगोश और सिंह गा रहे हैं। कबीर कहता है कि ऐ संतो, सुनो (यह आश्चर्य की बात है कि) कीड़े ने पर्वत खा लिया है और कछुआ कहता है कि (इस विवाह में) अंगार भी चंचल हो रहा है और उलूकी आध्यात्मिक उपदेश सुना रही है। [टिप्पणी—जीवों का यह रूपक कबीर के रूपक-रहस्य की विशेषता है। जीवात्मा और माया का विवाह होने पर इंद्रियाँ उत्सव मनाने लगती हैं। हाथी, बैल, कौआ, गधा और भैंसा ये कर्मेन्द्रियों के रूप में हैं और सिंह, घूस, चूहा, कछुआ और शशक ये ज्ञानेन्द्रियों के रूप में हैं। यहाँ जिस क्रिया-कलाप का वर्णन है; वह विवाह से संबंध रखता है। 'कीड़े ने पर्वत खा लिया' का तात्पर्य है—देह ने आत्मा को निगल लिया, 'अंगार भी चंचल हो गया' का तात्पर्य है—आध्यात्मिक अनुराग संसार के विषयों की ओर आकृष्ट हो गया और 'उलूकी आध्यात्मिक उपदेश सुना रही है' का तात्पर्य है—अज्ञता धार्मिक स्वाँग भर रही है। 'ककड़ी के बड़े' का तात्पर्य है—सच्चा ज्ञान। अंतिम पंक्ति का पाठ होना चाहिए: 'कछुआ कहै अंगार भि लोर उलूकी सबदु सुनाइआ'।]

७

बटुवा तो एक (शरीर) है जिसमें बहत्तर (नाड़ियों की) आधारियाँ (लकड़ी की टेवकी जिसका सहारा लेकर साधू जन बैठते हैं।) और जिसका एक ही (ब्रह्म-रंध्र) द्वार (या मुँह) है। ऐसे बटुवे के साथ जो नौ खंड की पृथ्वी (समस्त पृथ्वी) माँग लेता (अधिकार कर लेता) है, वही सारे संसार में (सच्चा) योगी है। ऐसा योगी नवों निधि प्राप्त करता है जो नीचे (मूलाधार चक्र) का ब्रह्म ऊपर (सहस्रदल) में ले जाता है। ऐसा योगी ध्यान ही को सुई बनाकर, उसमें शब्द का तागा भाँज कर डालता है और ज्ञान रूपी खिंथे (वस्त्र) को सीता है। वह पंच तत्व का तिलक करता है और गुरु के दिखलाए हुए मार्ग पर चलता

है। वह दया की फावड़ी (से ज़मीन साफ़ कर) काया की धूनी (बनाता है) और उसमें अपनी (ज्ञान) दृष्टि की आग जलाता है। उस (ब्रह्म) का भाव हृदय के भीतर लेकर चारों युगों का त्राटक लगाता है। इस शरीर में जिसने प्राण दिए हैं उस राम का नाम ही सब योग की सामग्री है। कबीर कहता है, जो उस राम की कृपा धारण करता है वही सच्चा निशाना लगा सकता है। (सच्चा योग कर सकता है।)

८

हिंदू और मुसलमान ये (अलग अलग) कहाँ से आए? औ किसने यह (धर्म) पथ चलाया? ऐ मूर्ख, अपने हृदय में विचार कर कि बहिश्त और दोज़ख़ किसने पाई? ऐ क़ाज़ी, तूने किस कुरान का उपदेश दिया है? तूने पढ़ते-गुनते हुए सब लोगों को (भुलावा दे दे कर) इस प्रकार नष्ट किया कि किसी को अपने (विनाश का) पता ही नहीं चल पाया। यदि तू शक्ति से स्नेह कर (अर्थात् हिंसा-पूर्वक) सुन्नत करता है तो मैं इसे स्वीकार नहीं करूँगा। यदि खुदा मुझे मुसलमान बनायेगा तो मेरी सुन्नत आपसे आप हो जायगी। और यदि सुन्नत करने से ही कोई मुसलमान होता है तो स्त्री का क्या करेगा? (उसकी सुन्नति तो हो ही नहीं सकता।) अर्धांगिनी स्त्री तो छोड़ी भी नहीं जा सकती, इसलिए हिंदू ही रहना उचित है। (ऐ क़ाज़ी) तू क़ुरान का पढ़ना छोड़। अरे पागल, तू राम का भजन कर। तू बहुत अत्याचार कर रहा है। कबीर ने तो राम की टेक ही पकड़ी है। मुसलमान लोग (समझा कर) थक-पच गए।

९

मालिनी (पूजा के लिए फूल) पत्ती तोड़ती है, किंतु (यह नहीं जानती) कि पत्ती-पत्ती में जीवात्मा है। प्रत्युत जिस पत्थर (की मूर्ति) के लिए वह पत्ती तोड़ती है वही पत्थर (की मूर्ति) निर्जीव है। मालिनी यह भूल गई है कि सतगुरु देव जानता है (जो उसे उसका दोष दिखला

सकता है।) पत्ती में ब्रह्मा है, डाल में विष्णु है और फूल में शंकर देवता है। जब यह (मालिनी) प्रत्यक्ष रूप से इन तीनों देवताओं को तोड़ती है तो सेवा किसकी करती है? (मूर्तिकार ने) पत्थर को गढ़ कर मूर्ति बनाई। उसकी छाती पर पैर रखकर (उसका निर्माण किया) यदि यह मूर्ति सत्य है तो पहले (उसे) मूर्ति गढ़ने वाले को खाना चाहिए। भात, दाल, लपसी और रवेदार पंजीरी तो भोग लगाने वाले ने उड़ा डाली, इस मूर्ति के मुँह में केवल धूल ही पड़ी। (इस मूर्ति का फिट्टे मुँह!) कबीर कहता है कि मालिनी भूल गई और उसके साथ सारा संसार भुलावे में पड़ गया केवल मैं नहीं भूला! मेरे स्वामी राम और हरि ने कृपा कर मेरी रक्षा कर ली।

१०

(मेरी आयु के) बारह वर्ष बाल्यावस्था ही में कट गए। बीस वर्ष तक किसी प्रकार का तप नहीं किया। तीस वर्ष तक किसी देवता की पूजा नहीं की फिर वृद्ध होने पर केवल पछताना ही (हाथ) रह गया। 'मेरी-मेरी' करते ही सारा जन्म व्यतीत हो गया। इस (शरीर रूपी) सागर का शोषण करके (काल) सर्प बलवान हो गया। तू सूखे हुए सरोवर (शरीर) की मेंड़ बाँध रहा है, काटे हुए खेत की रक्षा कर रहा है। चोर (काल) आया और तुरंत ही (चोरी करके) ले गया और तू 'मेरी' कहता हुआ मूर्ख बना घूमता है। तेरे चरण, शीश, हाथ काँपने लगे और तेरे नेत्रों की पुतलियों से व्यर्थ ही आँसू बहते रहते हैं, तेरी जिह्वा से शुद्ध वचन भी नहीं निकलते तब तू धर्म कर्म की आशा करता है? जब हरि जी कृपा करें तभी 'हरि' का नाम लेकर लाभपूर्वक उनमें लौ लगाई जा सकती है। मैंने गुरु के प्रसाद से ही यह हरि (रूपी) धन पाया है। अंत में नाड़ी चली जाने पर (शरीर के निधन पर बिना कष्ट के) हम यहाँ से चल सकते हैं। कबीर कहता है, रे संतों, अन्न, धन (अथवा धन-बन) यहाँ से कुछ भी नहीं

ले जा सकते। जब गोपालराय (ईश्वर) का बुलावा आता है तब इस माया के मंदिर (शरीर) को छोड़कर चले जाना ही पड़ता है।

११

(ईश्वर ने) किसी को तो रेशमी वस्त्र दिए, किसी को निवाड़ से बुने हुए पलँग। किसी को नारियल और प्याज़ तक नहीं दी और किसी को खाने के लिए करैला दिया। इसलिए हे मन, भोजन के संबंध में विवाद मत करो, केवल सत्कर्म ही करते रहो। कुम्हार (ईश्वर) ने एक ही मिट्टी गूँध कर उसमें अनेक प्रकार की कांति उत्पन्न की। किसी में मोती और मुकताहल सुसज्जित किए और किसी में रोग भर दिए। कंजूस को तो धन सुरक्षित करने के लिए दिया है, वह मूर्ख कहता है कि यह धन मेरा है। जब यम का दंड उसके सिर लगता है तो पल भर में निर्णय हो जाता है (कि वास्तव में धन किसका है।) ईश्वर का सच्चा भक्त वही कहलाता है जो (उसकी) आज्ञा (मानने) में सुख पाता है। उसे जो अच्छा लगता है वह सत्य रूप से मानता है और अपना मन शरीर में नहीं लगाता। कबीर कहता है, रे संतो सुनो इस संसार में 'मेरी' 'मेरी' (की माया) झूठी है। कपड़े की पेटी की ज़ंजीर छूटने पर (काल) चीथड़े या गुदड़ी को फाड़ कर उसमें से चमकीला प्रकाशवान रत्न (आत्मा) ले भागता हैं।

१२

ऐ काज़ी, तुमसे ठीक तरह बोलते नहीं बनता। हम तो दीन, बेचारे ईश्वर के सेवक हैं और तुम्हारे मन में राजसी बातें भाती हैं। (किंतु इतना समझ लो कि) सर्वप्रथम ईश्वर, धर्म के स्वामी ने कभी अत्याचार करने की आज्ञा नहीं दी। तू रोज़ा रखता है, और नमाज़ गुज़ारता (पढ़ता) है किंतु यह समझ ले कि कलमा (जो वाक्य मुसलमान धर्म का मूल मंत्र है—ला इला इल्लिलाह मुहम्मद उर्रसूलिल्लाह।) पढ़ने से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। जो (साधना) कर सकता है वह

अपने शरीर के भीतर ही सत्तर काबा (के दर्शन कर सकता) है। नमाज़ का अर्थ में न्याय विचार और कलमा का अर्थ है अक़्ल को जानना। जो पाँचों (इंद्रियों) को मार कर मुसल्ला बिछाता है वही तो सच्चे धर्म को पहिचानता है! अपने स्वामी को पहिचान कर हृदय में दया का संचार कर, मानने का अहंकार ज़रा कम कर। जब तू स्वयं (धर्म को) जान कर दूसरे को भी जना दे तभी तो तू स्वर्ग का भागी होगा। 'मिट्टी एक ही है, उसने ही अनेक रूप रख छोड़े हैं और उस (प्रत्येक रूप) में ब्रह्म है' यही पहिचानने की आवश्यकता है। कबीर कहता है, तूने स्वर्ग छोड़कर नर्क से अपने मन को संतोष दिया है।

१२

आकाश (ब्रह्म-रंध्र) के नगर से एक बूँद भी नहीं बरसाती और वह नाद न जाने कहाँ समा जाता है? मैं तो समझता हूँ कि परब्रह्म परमेश्वर माधव परम हंस (जीवात्मा) को लेकर चले जाते हैं। (नहीं तो) ये बाबा जो (कुछ देर पहले) बोलते थे और शरीर से साथ रहते थे, जो अपनी आत्मा में नृत्य करते थे और कथा-वार्ता कहते थे, वे कहाँ गए? वह बजाने वाला कहाँ गया जिसने शरीर रूपी मंदिर में निवास किया! उसकी आत्मा से अब साखी और शब्द नहीं निकलते क्योंकि उसका सब तेज जो खींच लिया गया है! (उसी तरह) तेरे कान भी व्याकुल हो गए, तेरी इंद्रियों का बल भी थक गया। तेरे हाथ और पैर शिथिल होकर ढलक गए और तेरे मुख से बात भी नहीं निकलती। चोर की तरह ये पंच दूत (पंच तत्त्व) अपने आप में भ्रमण करते हुए थक गए। मन रूपी हाथी भी थक गया, हृदय भी थक गया जो अच्छा तेज धारण कर रमण करता था। मृतक होने पर दसों बंद छूट जाते हैं, और मित्र भाई आदि सब को छोड़ना पड़ता है। कबीर कहता है, जो हरि का ध्यान करता है वह जीते जी अपने शरीर के (विषय) बंधन तोड़ देता है।

१४

सर्पिणी (माया) जिसने ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को भी छला, उसके ऊपर कोई बलवान नहीं है। यह सर्पिणी निर्मल जल (आत्मा) में घुस गई है, उसे मारो, मारो। जिसने त्रिभुवन को डस लिया, उसे मैंने गुरु के आशीर्वाद से देख लिया। ऐ भाई, तुम 'सर्पिणी' 'सर्पिणी' क्या कहते हो? जिसने 'सत्य' की परख कर ली है, उसी ने सर्पिणी का नाश किया है। सर्पिणी से अधिक कोई दूसरी चीज़ मिथ्या या सारहीन नहीं है। यदि सर्पिणी जीत ली जाय तो यम क्या कर सकता है? यह सर्पिणी तो उसी (ब्रह्म) की बनाई हुई है। इसके ऊपर 'बल' और 'अबल' क्या हो सकता है? (यह तो सिर्फ़ उसी ब्रह्म की इच्छा है कि यह सर्पिणी कभी शक्ति-सम्पन्न हो या शक्ति-हीन।) यद्यपि वह शरीर की इसी बस्ती में निवास करती है तथापि गुरु के प्रसाद से कबीर सरलता से उस (सर्पिणी से) मुक्ति पा गए।

१५

कुत्ते को स्मृति सुनाने से क्या (लाभ)? उसी तरह शाक्त (शक्ति के उपासक) के समीप ईश्वर के गुण गाने से क्या (लाभ)? इसलिए तुम केवल राम में ही रमण करो और करते रहो। किसी शाक्त से भूल कर भी (उस राम के संबंध में) कुछ न कहो। कौवे को कपूर चुगाने से क्या (लाभ)? सर्प को दूध पिलाने से क्या (लाभ) सत्संगति में मिल कर विवेक-बुद्धि होती है जिस तरह पारस के स्पर्श से लोहा स्वर्ण हो जाता है (किंतु इन शाक्तों में कभी परिवर्तन नहीं हो सकता!) शाक्तों और कुत्तों से सभी कुछ कर गुज़रा (समझो।) प्रारंभ से जैसा इनके भाग्य में लिख गया है, वही कर्म ये करते हैं। (ये सत्संगति आदि से नहीं सुधर सकते।) यदि अमृत ले ले कर नीम को सींचो तो कबीर कहता है, उसका (कड़वा) स्वभाव कभी नहीं जा सकता।

१६

जिस रावण ने (अपनी रक्षा के लिए) लंका जैसा क़िला बनाया जिसके चारों ओर समुद्र की खाई-सी बनी थी, उस रावण के घर की ख़बर भी आज किसी को नहीं है। इसलिए (ईश्वर से) क्या माँगते हो कुछ भी तो स्थिर रहने वाला नहीं है। आँखों देखते यह सारा संसार चला जा रहा है। जिस रावण के एक लाख पुत्र और सवा लाख नाती थे, उस रावण के घर में आज दिया-बत्ती भी नहीं है। चंद्र और सूर्य जिसका भोजन पकाते थे और अग्नि जिसके कपड़े धोता था (वह रावण कहाँ है?) गुरु की आज्ञा से (हृदय में) राम-नाम ही को स्थान दो जो इस प्रकार स्थिर रहता है कि वह कभी नहीं जाता (उसका कभी विनाश नहीं होता।) कबीर कहता है, रे लोगो सुनो, राम-नाम के बिना मुक्ति नहीं होती।

१७

पहले पुत्र हुआ पीछे माता उत्पन्न हुई और गुरु अपने शिष्य के चरण स्पर्श करता है। हे भाई, तुम यह आश्चर्य सुनो कि तुम्हारे देखते हुए गाय सिंह को चरा रही है। जल में रहने वाली मछली पेड़ पर जाकर जनती है और आँखों के सामने कुत्ते को बिल्ली ले जाती है। एक पेड़ है जो नीचे तो बैठा हुआ है अथवा जिसके नीचे तो पत्ते हैं और ऊपर जड़ है, ऐसा पेड़ फूल-फलों से परिपूर्ण है। घोड़ा चरता है और भैंस उसे चराने ले जाती है, बैल तो बाहर ही खड़ा रहता है और गोनि घर के भीतर (अपने आप) चली आती है। कबीर कहता है, जो इस पद को समझता है, वह राम में रमण करता है और उसे संसार का सारा रहस्य सूझ पड़ता है। [टिप्पणी—यह कबीर की एक उल्टबाँसी है और इसके सारे रूपकों में कार्य-व्यापार की परिस्थिति उलटी बतलाई गई है। आध्यात्मिक पक्ष में इस रूपक में आए हुए नामों का निम्नलिखित अर्थ लेने से अर्थ-संगति स्पष्ट हो जाती है:—

[पुत्र—जीव। माता—माया। गुरु—शब्द। चेला—जीवात्मा। सिंह—ज्ञान। गाय—वाणी। मछली—कुंडलिनी। तरुवर—मेरुदंड। कुत्ता—अज्ञानी। बिल्ली—माया। पेड़—सुषुम्णा नाड़ी। फलफूल—चक्र और सहस्रदल कमल। घोड़ा—मन। भैंस—तामसी वृत्तियाँ। बैल—पंच प्राण। योनि—स्वरूप की सिद्धि।]

१८

जिस माता ने तुझे विंदु से पिंड का रूप दिया और उदर-ज्वाला से (बचा कर, सुरक्षित करके) अपने पेट में दस मास रक्खा (उस माता के कष्टों पर ध्यान न देते हुए) तू माया के वशीभूत फिर हो गया ? रे प्राणी, (संसार सुखों के) साधारण लोभ के लिए तू अपना रत्नरूपी जन्म क्यों खो रहा है ? (ज्ञात होता है कि) पूर्वजन्म की कर्म-भूमि में तूने बीज नहीं बोया। बाल्यावस्था से तू वृद्धावस्था को प्राप्त हुआ। जो होना था सो तो हुआ किंतु जब यमराज आकर तेरे केश पकड़ता है तो तू क्यों रोता है ? जब तू जीवन की आशा करता है तब यमराज तेरी साँसों (की गिनती करता हुआ तुझ) को देखता है। कबीर कहता है, यह संसार एक इंद्रजाल है। तू अब भी सँभल कर अपने (कर्मों का) पासा फेंक।

१९

तन और मन को बार बार सुगंधित पराग-कणों में परिवर्तित कर मैं पाँचों तत्वों को बराती बनाऊँगी और राजा राम के साथ भाँवर (विवाह कर) लूँगी क्योंकि मेरी आत्मा उन्हीं के रंग में रँगी हुई है। हे सौभाग्यशालिनी नारियों, मंगलगीत गाओ क्योंकि मेरे घर स्वामी राजा-राम आए हैं। जिस राम के नाभि-कमल से उत्पन्न होकर (ब्रह्मा ने) वेदों की रचना की और (संसार में) ज्ञान का विस्तार किया, उसी राम को मैंने पति रूप में पाया है, मेरा इतना बड़ा भाग्य है ! इस अवसर पर कितने ही देवता, मनुष्य और मुनिजन आए हैं। मैं तो जानती हूँ कि

उनकी संख्या तेतीसों करोड़ है। (उन्हीं के सामने) मुझे एकेश्वर भगवान विवाह कर ले चले हैं— ऐसा कबीर कहता है।

रागु सोरठि

१

मूर्ति की पूजा करते-करते हिंदू मर गए और सिर झुका-झुका कर (नमाज़ पढ़ते हुए मुसलमान मर गए। वे (हिंदू किसी के मरने पर उसे) जला देते हैं और वे (मुसलमान) गाड़ देते हैं किंतु दोनों ने ही (ऐ मन) तेरे रहस्य को नहीं समझा। ऐ मन, यह संसार बहुत बड़ा अंधा है (जो यह नहीं देखता कि) चारों दिशाओं में मृत्यु का बंधन फैला हुआ है। कवि लोग सुंदर कपड़ों से सजे हुए सभा-भवनों में कवित्त पढ़ते हुए मर गए और जटा रख-रख कर योगी मर गये फिर भी (ऐ मन) ये लोग मुझे नहीं पहचान सके (तुझ पर विजय प्राप्त नहीं कर सके।) द्रव्य संचित करते हुए राजा मर गए जिन्होंने दुर्गों पर विजय प्राप्त कर बहुत-सा स्वर्ण एकत्रित किया। वेद पढ़-पढ़ कर पंडित मर गए और रूप देख-देख कर नारी भी मर गई। अपने शरीर की ओर देख कर यह समझ लो कि राम-नाम के बिना सभी लोग छले गए हैं। कबीर यह उपदेश करके कहता है, हरि के नाम के बिना किसने गति पाई है?

२

इस शरीर का गौरव यही है कि जब जलता है तो भस्म हो जाता है, पड़ा रहता है तो इसे कीट-कृमि खा डालते हैं। कच्चे घड़े भर पानी पड़ता है, (तब उसके नष्ट होने के समान ही यह शरीर है।) क्यों भैया, फूले-फूले फिर रहे हो? जब दस महीने औंधे मुख रहे थे, वह दिन कैसे भूल गए? जिस प्रकार मधु मक्खी रस एकत्रित करती है उसी भाँति तुमने जोड़-जोड़ कर धन एकत्रित किया है। मरते समय लोग उसी धन को 'ले लो' ले लो' कह कर ले लेते हैं (और तुझे बाहर

निकाल देते हैं ।) भूत को घर में कौन रहने देता है ? घर की देहली तक तेरे साथ तेरी विवाहित स्त्री रहती है। इसके आगे नगर के सज्जन और संभ्रांत लोग रहते हैं। श्मशान तक सब कुटुम्ब के लोग रहते हैं, इसके आगे जीवात्मा अकेला जाता है। कबीर कहता है, प्राणी, सुन। तू काल से पकड़ा जाकर कूएँ में गिर पड़ा है। तूने झूठी माया में अपने आप को वैसा ही बँधा लिया है जिस प्रकार सेमल की रंगीन फली के भ्रम में तोता। वह समझता है कि इस रंगीन फल में बहुत स्वाद होगा किंतु जैसे ही वह उसमें चोंच मारता है, वैसे ही उसमें से रुई निकल पड़ती है।)

३

वेद पुराण आदि सभी धार्मिक ग्रंथों के सिद्धांत सुन कर तूने कर्म की आशा की (कि उससे तेरा निस्तार होगा) किंतु जिस समय काल ने लोगों को खाना शुरू किया तो वे चतुर (?) लोग निराश होकर गुरु के पास चले ! रे मन, इस (ढंग) से एक भी कार्य सफल नहीं हो सकता, यदि तूने रघुपति राजा का भजन नहीं किया। नादी (जो अनाहत नाद में विश्वाश रखते हैं), वेदी (जो वेदों के मानने वाले हैं) शबदी (जो शब्द-ब्रह्म के उपासक हैं) और मौनी (जो जीवन पर्यंत मौन-व्रत धारण करते हैं) साधुओं ने वनखंड में जाकर योग और तप किया और चुन कर सात्विक कंद और मूल का आहार किया किन्तु उनसे भी यमराज का पट्टा ही लिखाया गया (अर्थात् वे भी यम के अधिकार-पत्र से शासित हुए।) जिनके हृदय में नारदी भक्ति नहीं आई और जिन्होंने अपने शरीर को भक्ति के आडंबरों से बहुत अच्छी तरह सजाया और राग एवं रागनी अलापते हुये आडम्बरी रूप रक्खा, उन्होंने हरि से क्या प्राप्त किया ? समस्त संसार के ऊपर काल की छाया पड़ी है और उसमें ज्ञानीजन भ्रम से चित्रवत् लिखे हुए हैं। कबीर कहता है, वे ही कुछ सेवक खालसे (शुद्ध) हो सके जिन्होंने प्रेम और भक्ति को

वास्तविक रूप से समझा है।

रागु तिलंग

१

हे भाई, वेद और कुरान ये झूठे हैं, इनसे हृदय की चिंता नहीं जाती। यदि एक क्षण भर के लिए हृदय में थोड़ी स्थिरता ले आओ तो सर्व स्वामी ईश्वर तुम्हारे सामने ही उपस्थित ज्ञात होगा। ऐ बन्दे, तू अपने हृदय में प्रतिदिन खोज और व्यर्थ की व्याकुलता में मत फिर। यह जो संसार है वह एक नगर-मेले की तरह है जिसमें विपत्ति के समय हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं है। तू झूठ-मूठ पढ़-पढ़ कर प्रसन्न होता है और निश्चिन्त होकर ईश्वर के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं पर वाद-विवाद बकता फिरता है। (सत्य तो यह है कि) सर्वश्रेष्ठ ईश्वर ही सच्चा है। वह सृष्टिकर्ता सृष्टि के बीच में ही है किंतु वह श्याम मूर्ति के रूप में नहीं। आकाश के बीच में जो आकश-गंगा है उसी में उसने स्नान किया था। उसी का सदैव चिंतन कर और अपनी अंतर्दृष्टि से देख कि वह यत्र-तत्र-सर्वत्र विद्यमान है। अल्लाह (ब्रह्म) ही पूर्ण पवित्र है। उस पर संदेह तो तब किया जाय जब वह एक से भिन्न (दूसरा) हो। कबीर कहता है, वह कृपालु ही जिस पर कृपा करे, वही उसे जान सकता है।

रागु सूही

२

शासनाधिकार समाप्त हो गया, अब सारा लेखा देना होगा। उसे लेने के लिए यम के निर्दय दूत आ पहुँचे। तुमने क्या सुरक्षित किया है और क्या खो दिया है, शीघ्र ही चलो, दीवान (धर्मराज) ने बुलाया है। दीवान के बुलाने से इसी समय चलो क्योंकि ईश्वर के दरबार का आज्ञा-पत्र आया है। निवेदन के साथ जो कुछ भेंट देना

है दो और यदि कुछ कहना शेष है तो उसे गा दो। आज की रात भर है जो कुछ सुलझाना है उसे सुलझा लो। जो कुछ भी तुम्हारा ख़र्च हुआ है, उसकी पूर्ण रक्षा कर लो। प्रातःकाल की नमाज़ सराय में जाकर गुज़ारना, अदा करना। साधु-संगति से जिसे हरि का रंग लग गया है, वह भाग्यशाली पुरुष धन्य है। ईत (साधारण जन) और ऊत (निस्संतान) बड़े सुखी और सुंदर हैं जिन्होंने (सब झंझटों से रहित होकर) जन्म का अनमोल फल प्राप्त किया है। अन्यथा संसारी मनुष्य ने) जागते-सोते अपना जीवन खो दिया है और संपत्ति जोड़ कर वे दूसरों (अपनी स्त्री और बच्चों) के वश में हो गए हैं। कबीर कहता है, ऐसे ही मनुष्य भूले हुए हैं क्योंकि वे अपने स्वामी को भूल कर मिट्टी (सुंदर स्त्री और धन आदि) में उलझ गए हैं।

३

(देखते देखते) नेत्र थक गए, सुनते सुनते कान थक गए और (कार्य करते हुए) सुंदर शरीर थक गया। वृद्धावस्था की हुंकार से सब बुद्धि थक गई केवल एक माया ही नहीं थकी। रे पागल, तू ज्ञान का विचार नहीं कर पाया। तूने व्यर्थ ही जन्म गँवा दिया। प्राणी तब तक (सुख के) सरोवर की तृष्णा करता रहता है जब तक कि उसके शरीर में साँस रहती है। यदि वह हरि के चरणों में निवास करने के लिए अपना शरीर भी ले जाता है तो उसके साथ भक्ति-भाव नहीं जाता। जिसके हृदय के भीतर 'शब्द' निवास कर लेता है, उसकी (सांसारिक वासनाओं के प्रति) प्यास जाती रहती है। वह (ईश्वर का) आदेश समझ कर जीवन की चौपड़ खेलता है और मन लगा कर अपने (भावों का) पाँसा डालता है। जो भक्त अविगत (ईश्वर) को जान कर उसका भजन करते हैं, उनका किसी प्रकार भी नाश नहीं होता। कबीर कहता है, वे सेवक कभी नहीं हारते जो पाँसा डालना जानते हैं।

४

एक दुर्ग (शरीर) है, उसके पाँच विश्वसनीम और बलवान रक्षक (पंच प्राण) हैं। वे पाँचों मुझसे कैफ़ियत तलब करते हैं। मैंने किसी की ज़मीन तो जोती-बोई नही है। (ऐसी स्थिति में) कैफ़ियत देना दुःखप्रद मालूम होता है। ऐ हरि भक्तों, मुझे इस दुर्ग के पटवारी (मन) की नीति डसती या दुःख देती है। जब मैंने भुजा उठा कर गुरु को रक्षा के लिए पुकारा तब उन्होंने मेरा उद्धार कर लिया। उस दुर्ग में नौ तो दंड देने वाले जमादार (नव द्वार) हैं और दम दौड़ने वाले मुंसिफ (दस इंद्रियाँ) हैं। वे किसी (भक्ति-भाव की) प्रजा का निवास करने नहीं देते। वे (बुद्धि की) पूरी डोरी नापते भी नहीं हैं और बहुत वेगार लेते हैं। बहत्तर कोठे वाले घर (शरीर) में एक पुरुष (अहंकार) समाया हुआ है, उसी नें मेरा नाम (वेगार में) लिखा दिया है। जब धर्मराज का चिट्ठा देखा गया तो मेरे ऊपर न पावना था, न देना। अतः संतों की कोई निंदा न करे क्योंकि संत और राम एक ही हैं। कबीर कहता है, मैंने वह गुरु पा लिया है जिसका नाम विवेक है।

रागु गौंड

१

संत के मिलने पर उससे कुछ सुनना-कहना चाहिए। यदि असंत मिले तो चुप हो रहना चाहिए। बाबा, उनसे क्या बोलना और क्या कहना! चुप होकर जैसे राम नाम में ही लीन हो जाना चाहिए। संतों से बोलने में तो उपकार होता है किंतु मूर्ख से बोलना मानो झख मारना है। बोलते बोलते ही तो बुराई बढती है। न बोलने से वह बेचारा क्या कर सकता है! कबीर कहता है, खाली घड़ा ही आवाज़ करता है; जो भरा होता है उसका पानी हिलता भी नहीं है (और वह शब्द भी नहीं करता।)

२

मनुष्य मर कर मनुष्य के भी काम नहीं आता। पशु मर कर दस काम सँवारता है। फिर मैं अपने कर्मों की क्या गति समझूँ! हे बाबा, मैं क्या समझूँ! हड्डियाँ इस तरह जल जाती हैं जैसे काठ और केश इस तरह जल जाते हैं जैसे घास का पूला। कबीर कहता है, मनुष्य तो (अपनी मोह-निद्रा से) तभी जागेगा जब यम का दंड उसके सिर पर लगेगा।

३

आकाश में गगन है, पाताल में भी गगन है, चारों दिशाओं में गगन रहता है। वहीं आनंद-मूल चिरंतन पुरुषोत्तम है। इसलिए शरीर के विनष्ट होने पर गगन विनष्ट नहीं होता। यही देख कर मुझे वैराग्य हो गया। यही जीवात्मा यहाँ आकर कहाँ चला जाता है? (पुरुषोत्तम ने) पंच तत्वों को मिला कर शरीर का निर्माण किया, इसमें जीवात्मा जो तत्व है उसका निर्माण किस वस्तु से किया? तुम जीव को कर्मबद्ध कहते हो तो कर्म को किसने जीवन प्रदान किया? हरि में ही पिंड है और पिंड ही में हरि है वही हरि सर्वमय और निरंतर है। कबीर कहता है, मैं राम-नाम को नहीं छोड़ूँगा। जो कुछ स्वाभाविक रीति से हो रहा है, उसे होने दो।

४

[कहा जाता है कि सिकंदर लोदी ने कबीर को दंड देने के लिए उन्हें बाँध कर हाथी के सामने फेंक दिया था। किंतु हाथी चिंघाड़ मार कर दूर भाग गया था। उसी अवसर का यह पद ज्ञात होता है।] मेरी भुजाएँ बाँध कर, मुझे पिंड बनाकर (हाथी के सामने) डाल दिया किंतु हाथी ने क्रुद्ध होकर अपना सिर पृथ्वी पर दे मारा। फिर भाग कर चीत्कार करने लगा। मैं प्रभु के रूप की बलिहारी जाता हूँ। तू मेरा स्वामी है और यह तेरी ही शक्ति है (कि हाथी चीत्कार करता

हुआ भाग गया। दूसरी ओर क़ाज़ी क्रुद्ध होकर बक रहा है कि 'हाथी चलाओ। रे महावत, मैं तुझे काट डालूँगा, इस हाथी को मार कर जल्दी आगे बढ़ा।' हाथी आगे नहीं बढ़ता। वह (प्रभु का) ध्यान धरता है क्योंकि उसके हृदय में भी भगवान निवास करते हैं। भला, (संत ने क्या) अपराध किया है कि उसकी पोटली (गठरी) बनाकर हाथी के सामने रख दी। हाथी उस पोटली को ले-लेकर नमस्कार करता है। क़ाज़ी अज्ञानांधकार में है अतः वह इस रहस्य को नहीं समझ सकता। तीन बार उस क़ाज़ी ने अपनी प्रतिज्ञा भरी (और हाथी के सामने संत को डाला) मन कठोर होने के कारण उसे फिर भी (ईश्वर की शक्ति में) विश्वास नहीं हुआ। कबीर कहता है, हमारा (स्वामी) गोविंद है। भक्त की आत्मा का निवास तो सदैव चौथे पद (मुक्ति) में है।

५

(इस शरीर में जो आत्मा है) यह न तो मनुष्य है, न देव। न यह यति कहलाती है, न शिव। न यह योगी है, न अवधूत। न इसके कोई माता है, न पुत्र। इस महल (शरीर) में कौन निवास करता है, उसका अंत किसी ने भी नहीं पाया। न यह गृही है, न उदासी। न यह राजा है, न भीख माँगने वाला। न इसके पिंड है, न लाल रक्त। न यह ब्राह्मण है, न बढ़ई। न यह तपस्वी कहलाता है, न शेख़। न इसे कभी जीते देखा है, न मरते। इसके 'मरने' पर जो कोई रोता है वह अपनी मर्यादा ही खोता है। गुरु के प्रसाद से मैंने रास्ता पा लिया है और मैंने जीवन-मरण दोनों को नष्ट करा लिया है। कबीर कहता है, यह जीवात्मा राम (परमात्मा) का अंश है और यह उसी प्रकार नहीं मिट सकता जिस प्रकार काग़ज़ पर स्याही का चिह्न नहीं मिट सकता।

६

(कबीर की भक्ति पर व्यंग्य करते हुए उनकी स्त्री लोई कहती है:)

पानी के कम हो जाने से करघे का धागा टूट-टूट जाता है और वह दूसरी ओर बाहर होकर मानों अपने कान हिलाता हुआ निकल पड़ता है। बेचारा कूच फूल गया है और उस पर फफूँदी चढ़ गई है और मुंडीआ (हत्था जो राछ के ऊपर रहता है) के सिर काल चढ़ने वाला है अर्थात् शीघ्र ही नष्ट होने वाला है। इसी मुंडिया (हत्था) के ख़रीदने में सारा पैसा लग गया था। और इसके आने-जाने के प्रयोग में कभी कसर नहीं होती थी (अर्थात् सदैव करघा चलता रहता था।) किंतु अब तुरी (तोड़िया) और नरी की बात ही छोड़ दी गई है क्योंकि उनका (कबीर का) मन राम-नाम ही में रँग गया है। लड़की और लड़कों के खाने के लिए कुछ भी नहीं है। हाँ, ये मुंडिया (साधु संन्यासी) प्रति-दिन संतुष्ट किये जाते हैं। एक दो (मुंडिया) घर में हैं, एक दो रास्ते में हैं (जो घर की ओर आ रहे हैं।) हम लोग तो ज़मीन पर बिस्तर डाल कर सोते हैं और इन लोगों के लिए खाट का प्रबन्ध किया जाता है। ये लोग सिर घोकर कमर में पोथी बाँध लेते हैं, बस इसी बात पर ये तो मेरे घर में रोटी खाते हैं और हमें चबैना ही मिलता है। ये मुंडिया (संन्यासी) और मुंडिया (संन्यासी—हमारे पति) एक हो गए हैं। इन सन्यासियों ने हमें डुबाने ही की ठानी है। (यह सुन कर कबीर ने कहा:) ऐ अंधी और निर्दयी लोई, इन्हीं मुंडियों के भजन करने से तो कबीर को (भगवान) की शरण मिली है।

रागु रामकली

१

काया रूपी मद्य बेचने वाली ने (आत्मा के) लाभ के लिए गुरु का शब्द ही गुड़ किया और उसमें तृष्णा, काम, क्रोध, मद और मत्सर को काट-काट कर उसका खिंचा हुआ अर्क़ मिला दिया। क्या कोई ऐसा संत है जिसके हृदय में 'सहज' का सुख है? उसे मैं अपना

समस्त जप दलाली के रूप में दे सकता हूँ। वह मेरे मन और शरीर को (उस मद की) एक बँद भर ही दे दे। हाँ. वह संत उस मद्य वेचने वाली से वह मद प्राप्त भर कर सके। उस मद्य वेचने वाली ने चौदहों भुवनों को तो भट्ठी बनाया और उसमें ब्रह्माग्नि किंचित् मात्र ही जलाई। उसमें मुद्रा रूपी मदक मिलाई गई और 'सहज' की ध्वनि से ओत-प्रोत सुषुम्णा नाड़ी उस मद को पोंछने वाली (या निचोड़ने वाली) बनी। उसके मूल्य में तीर्थ, व्रत, नेम और पवित्र संयम तथा (शरीर के अंतर्गत) सूर्य और चंद्र रूपी आभूषण भी दे दो और आत्मा रूपी प्याले में इस अमृत का मीठा रस, जो महारस है, उसे पियो। उसकी वहती हुई धारा अत्यंत निर्मल होकर चू रही है, इसी रस में मेरा मन अनुरक्त हो गया है। कबीर कहता है, अन्य सभी रस सार-हीन हैं, एक यही महारस सच्चा है।

२

ज्ञान को गुड़ करो और ध्यान को महुवा बनाओ, संसार को भट्ठी बना कर मन में धारण करो। उसमें 'सहज' भाव में रमी हुई सुषुम्णा को नली बनाओ, तब पीने वाला (संत) उस महारस को पी सकेगा। हे अवधूत, मेरा मन मतवाला हो गया है। इन मदों के रस को चख कर वह उन्माद पर चढ़ गया है और उसे समस्त त्रिभुवन में प्रकाश दीख पड़ता है। दोनों पुरों (लोक और परलोक) को जोड़कर मैंने अपनी भट्ठी में रस उत्पन्न किया और तब इस भारी महारस का पान किया। काम-क्रोध इन दोनों को मैंने जलने वाली लकड़ी बनाया जिससे मुझ से सांसारिकता छूट गई। गुरु के द्वारा अनुभूत ज्ञान का स्पष्ट प्रकाश फैल गया और सतगुरु से मैंने स्मृति प्राप्त की कि मुझ में और उसमें कोई अंतर नहीं है।) दास कबीर तो उसी मद से मतवाला है जो कभी उछल (उतर) नहीं जाता।

३

हे स्वामी, तू मेरे लिए मेरु पर्वत के समान है। मैंने तेरी ही ओट (शरण) ली है। न तो तुम अस्थिर होते हो और न मेरा पतन होता हैं। इस भाँति हे हरि, तुमने हमारी (लज्जा) रख ली है। अब, तब, जब और कब (सभी समय) तुम ही तुम हो। और तुम्हारे प्रसाद से हम सदैव ही सुखी हैं। तुम्हारे ही भरोसे पर मैं मगहर बसा और मेरे शरीर की सारी जलन बुझ गई। पहले मैंने मगहर के दर्शन पाये, इसके बाद मैं काशी में आकर बस गया। मेरे लिए जैसा मगहर, वैसी ही काशी! हमने तो दोनों को एक ही समझा है हम तो निर्धन जीव हैं पर हमने (ज्ञान का) यह ऐसा धन पा लिया है जिसको पाकर अभि-मानी लोग अपने गुमान में फूल कर मर जाते। यदि मैं अभिमान करूँ तो मुझे ऐसा शूल चुभता है जिसके निकालने के लिए कोई (व्यक्ति) नहीं है। अभी तक (पूर्वजन्म के शूल की) तीखी चुभन से मैं बिलबिला रहा हूँ और घोर नारकीय यंत्रणा में पड़ा हुआ सड़ रहा हूँ क्या नर्क है और क्या बेचरा स्वर्ग है, संतों ने दोनों ही को देख डाला (नर्क संसार में और स्वर्ग ईश्वराधन में)। हम भी अपने गुरु की कृपा से दोनों में से किसी की मर्यादा नहीं रखते। अब तो हम (भक्ति के) सिंहासन पर जा चढ़े हैं और हमें सारंगपाणि (प्रभु) मिल गए हैं। राम और कबीर दोनों मिल कर इस प्रकार एक हो गए हैं कि (भिन्नता को) कोई पहिचान ही नहीं सकता।

४

हे संतों, तुम मुझे अपना सेवक मानों और मेरी सेवा की यही सीमा है कि रात-दिन मैं तुम्हारे चरण धोऊँगा और केशों (सिर) पर चँवर फेरूँगा। हम तो तुम्हारे दरबार के कुत्ते हैं। तुम्हारे आगे हम मुँह फाड़ कर भौंकते हैं। पूर्वजन्म से ही हम तुम्हारे सेवक हैं, अब इस जन्म में तो (पूर्वजन्म के अंक) मिट नहीं सकते। तुम्हारे

दरवाज़े पर 'सहज' की ध्वनि से मेरा माथा दाग़ दिया गया है (उसका चिह्न मेरे मस्तक पर है) जो इस प्रकार का चिह्न मस्तक पर रखते हैं वही (संसार) संग्राम में जूझ सकते हैं और जिनके मस्तक पर यह चिह्न नहीं हैं, वे भाग जाते हैं। जो साधु होता है वही भक्ति को पहिचान सकता है और हरि रूपी ख़ज़ाने को प्राप्त कर सकता है। कोठे (शरीर) में एक कोठी (सहस्र दल कमल) है और उस कोठी (सहस्र दल कमल) में भी एक सूक्ष्म कोठी (ब्रह्म-रंध्र है) उस पर विचार करो। उसी स्थान की वस्तु (ब्रह्म) गुरु ने कबीर को दी है और कबीर ने उस वस्तु को सँभाल कर ग्रहण की है। फिर कबीर ने वही वस्तु संसार को दी किंतु वह उसी ने ली जो भाग्यवान है। यह (ब्रह्मानंद रूपी) अमृत का रस जिसने पाया उसी का सौभाग्य स्थिर है।

५

जिस ब्राह्मण के मुख से वेद और गायत्री उच्चरित होती है वह ब्राह्मण (प्रभु को) क्यों भूल जाय ? सारा संसार जिस ब्राह्मण के चरण स्पर्श करता है, वह हरि-स्मरण क्यों न करे ? मेरे ब्राह्मण, तू हरि-नाम क्यों नहीं कहता ? तू राम-नाम क्यों नहीं लेता ? पंडित तू व्यर्थ (अपने से) नर्क को (और) भरता है! जब तू स्वयं उच्च है तो नीच (अ-ब्राह्मण) के घर भोजन क्यों करता है ? तू निकृष्ट कर्म करके अपना पेट भर रहा है। तू चौदस और अमावस (का ढोंग रच-रच कर दान माँगा करता है। हाथ में दीपक लेकर तू कुँए में गिर रहा है। तू ब्राह्मण है, मैं काशी का जुलाहा हूँ। मेरी और तेरी बराबरी कैसे बन सकती है ? हमारे (साथ वाले) तो राम-नाम कह कर उद्धार पा गए और पंडित वेद के भरोसे डूब कर मर गए !

६

एक तरुवर (शरीर) है जिसके अगणित डालियाँ और शाखें (नाड़ियाँ) और रस से भरे हुए पुष्प-पत्र (चक्र) हैं। यह तो अमृत

(रस) से भरा हुआ एक बाग़ है और इसे पूर्ण करने वाला (इसका रक्षक) हरि है। अब तो मैंने राजा राम की कहानी जान ली है। राम ने मेरी अंतर्ज्योति प्रकाशित कर दी है जिससे बिरला शिष्य ही जान सकता है। पुष्प (चक्र) के रस में अनुरक्त एक भ्रमर (जीवात्मा) है जिसने (हृदय स्थल में स्थित) अनाहत चक्र[1] (जिसमें बारह दल होते हैं) को हृदय में धारण कर लिया है। इससे विशुद्ध चक्र[2] (जिसमें सोलह दल होते हैं) में पवन (प्राणायाम) संचरित होने लगा है। और आकाश में फल (सहस्र दल कमल) विकसित होने लगा है। 'सहज' शक्ति से संपन्न शून्य में एक छोटा-सा पौदा (कुंडलिनी)[3] उत्पन्न (दृष्टिगत) हो गया। इसने पृथ्वी (मूलाधार चक्र) और सागर (सहस्र दल कमल)

---

[1]इस चक्र पर जो चिंतन करता है, वह अपरिमित ज्ञान प्राप्त करता है। भूत, भविष्य और वर्तमान जानता। वह वायु पर चल सकता है अर्थात उसे खेचरी शक्ति (आकाश में उड़ने की शक्ति) प्राप्त हो जाती है।

[2]जो इस चक्र पर चिंतन करता है वह योगीश्वर हो जाता है। वह चारों वेदों को उनके रहस्यों सहित समझ सकता है। इस चक्र पर ध्यान करते ही साधक संबंध बाह्य जगत से छूट कर आंतरिक जगत से हो जाता है। उसका शरीर कभी निर्बल नहीं होता और वह १००० वर्ष तक शक्ति-संपन्न जीवन व्यतीत करता है।

[3]मूलाधार चक्र में स्थित कुंडलिनी नाड़ी जो हठयोग की बड़ी महत्वपूर्ण शक्ति है और जो सर्प के समान सोती हुई अपनी ही ज्योति से आलोकित है, सुषुम्णा नाड़ी के सहारे छः चक्रों को पार करती हुई सहस्र-दल कमल के मध्य ब्रह्म-रंध्र में पहुँचती है। इसी रंध्र में प्राण-शक्ति संचित की जाती है। यहीं आत्मा शरीर से स्वतंत्र होकर सोऽहं अनुभव करती है।

का शोषण कर उन्हें एक कर दिया। कबीर कहता है, मैं उसका सेवक हूँ जिसने इस बिरवे (कुंडलिनी) को देख लिया है।

७

मुद्रा (हटयोग में अंग-विन्यास जैसे खेचरी, भूचरी आदि) को ही मोनि (पिटारी) बनाओ, दया को झोली बनाओ, विचार ही को पत्रका (हाथ में पहिनने का आभूषण) बनाओ, इस शरीर को सींते (संयम करते) हुए खिंथा (कंबल या गुदड़ी) बनाओ और नाम ही को आधार (आधारी लकड़ी जिसकी टेक देकर गोरख-पंथी साधु पृथ्वी पर बैठते हैं) बनाओ। हे जोगी, तुम ऐसे योग की सिद्धि करो और गुरुमुख (सच्चे शिष्य) होकर जप, तप और संयम का उपभोग करो। बुद्धि को ही भस्म बना कर अपने शरीर पर चढ़ाओ और अपनी सुरति (आत्मा) को ही सिंगी (मुँह से बजाने का बाजा) के स्वर में मिलाओ तथा वैराग्य लेकर मन की सारंगी बजाते हुए शरीर रूपी नगरी में ही परिभ्रमण करो। पंच तत्त्वों (आकाश, पवन, तेज, जल और पृथ्वी) को लेकर हृदय में अधिष्ठित करो जिससे तुम्हारी योग-दृष्टि निरालम्ब होकर स्वतंत्र बनी रहे। कबीर कहता है, ऐ संतो सुनो, इस योग में धर्म और दया को ही (अपने चारों ओर का सुख शांति-दायक) उपवन बना लो। कहने का तात्पर्य यह है कि योगी बाह्य आडंबरों को छोड़कर आंतरिक भाव से (योग-साधन करे।)

८

हमारा निर्माण संसार में किस उद्देश्य से हुआ और हमने इस जन्म का कौन-सा फल पाया इसका मैंने मन में कभी विचार नहीं किया तथा संसार-सागर के तरण तारण प्रभु (जो चिंतामणि के समान इच्छाओं की पूर्ति करने वाले हैं) उन्हें भी क्षण भर के लिए मन में स्थान नहीं दिया। हे गोविंद, हम ऐसे अपराधी हैं कि जिस प्रभु ने शरीर में प्राण दिए उसकी शुद्ध भावना से भक्ति-साधना नहीं की।

पराये धन, पराये शरीर परायी स्त्री की निंदा तथा परायी अपकीर्ति मुझसे नहीं छूटी। फलस्वरूप बार बार (संसार में) मेरा आवागमन होता है और (जन्म-मरण का) यह प्रसंग कभी नहीं टूटता। जिस घर में हरि और संतों की कथा होती है, उसकी ओर मैंने एक क्षण भर भी गमन नहीं किया। मैंने सदैव लंपट, चोर और मस्त सेवकों का ही साथ किया। मेरे पास काम, क्रोध, माया, मद और मत्सर हैं और यही मेरी संपत्ति है। दया, धर्म और गुरु का सेवा ये मेरे निकट स्वप्न में भी नहीं है। हे दीनों पर दया करने वाले, कृपालु, भक्तवत्सल और भय हरण करने वाले दामोदर, इस सेवक को आपत्ति और संकट से सुरक्षित रक्खो। हे हरि, मैं तुम्हारी सेवा करूँगा।

रागु केदारा

१

स्तुति और निंदा इन दोनों से रहित होकर मान और अभिमान दोनों को छोड़ दो। जो लोहे और सोने को समान रूप से जानते हैं, वे भगवान के प्रतिरूप हैं। (हे हरि) कोई एकाध ही तेरा सेवक है जो काम, क्रोध, लोभ और मोह को छोड़ कर तेरा पद पहिचानता है। रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण इन्हें तेरी माया (के रूप) ही कहना चाहिए। जो मनुष्य (इनसे परे चौथे पद् अर्थात् मुक्ति) को पहि-चानता है उसी ने परमपद् प्राप्त किया है। तीर्थ, व्रत, नियम और पवित्र संयम से वह सदैव निष्काम रहता है। तृष्णा और माया के भ्रम से जो रहित हो जाता है वही आत्माराम (हृदय के अतर्गत ईश्वरीय) बोध की ओर देख सकता है। जिस (घर) शरीर में (ज्ञान का) दीपक प्रकाशित हुआ, वहाँ (माया और मोह का) अंधार नष्ट हो गया। कबीर कहता है, वह दास निर्भय होकर परिपूर्ण हो जाता है, उसका भ्रम भाग जाता है

२

किन्ही ने काँसे और ताँबे में व्यापार किया और किन्हीं ने लौंग और सुपारी में। संतों ने गोविंद के नाम से व्यापार किया। (और संतों के इस व्यापार में) हमारी भी खेप है। इस प्रकार हम हरि के नाम के व्यापारी हैं। (इस व्यापार में) हमारे हाथ अमूल्य हीरा (भक्ति-भाव) लग गया है जिससे हमारी सांसारिकता छूट गई है। जब हम सच्ची वस्तु (व्यापार में) लाए हैं तो (उसका मुल्य भी) सच ही लगा क्योंकि हम सच्ची वस्तु ही के व्यापारी हैं। सच्ची वस्तु की खेप ढोने से ही हम सीधे सत्य का भंडार रखने वाले के समीप पहुँच गए हैं। (वास्तव में बात तो यह है कि) ईश्वर ही स्वयं रत्न, जवाहर और माणिक है तथा स्वयंरक्षक (फा०—पासदार) है। स्वयं ही दशों दिशा रूप है और स्वयं ही (उन दिशाओं में) चलाने वाला है। व्यापारी बेचरा तो निश्चल (अशक्त) है। तुम मन को तो बैल बनाओ और आत्मा (सुरति को) मार्ग तथा ज्ञान से अपनी गोनि (शरीर) भर लो। कबीर कहता है, हे संतों! इसी भाँति हमारी खेप को सफलता मिली है।

३

अरी मूर्ख गँवार कलवारिन (आत्मा), तू पवन को उलट ले (अर्थात् प्राणायाम कर) और मतवाले मन के द्वारा मेरु-दंड की चोटीपर रक्खी हुई भट्टी से अमृत की धार को चूने दे। हे भाई, राव की दुहाई बोलो। सदा मति (निरंतर बुद्धिमान) संत होकर इस दुर्लभ (रस) का पान करो जिससे सरलतापूर्वक प्यास बुझाई जा सकती है। इस संसार के भय में कोई विरला ही भक्ति-भाव समझ सकता है और वही ईश्वर रूपी रस प्राप्त कर सकता है। यों तो जितने शरीर हैं, सभी में अमृत है किंतु जिसे तू पसंद करे, उसी को रस-पान करा। (उसी को अनुभव करा कि तुझ में ही ब्रह्म-द्रव है।) एक नगरी (शरीर) है, उसके नौ दरवाज़े हैं। उसमें दौड़ते हुए जो अपने को रोक सकता है और

त्रिकुटी को छोड़ कर जो अपना दशवाँ द्वार (ब्रह्म-रंध्र) खोल सकता है, हे भाई, वही सच्चा मनुष्य (मनखीवा) है अथवा उसी में सच्चा मतवालापन (खीवा) है। कबीर विचार कर कहता है, ऐसे मनुष्य को पूर्ण अभय-पद प्राप्त होता है और उसका संपूर्ण ताप नष्ट हो जाता है। वह इस (ब्रह्म-रस रूपी) मद का पान कर उसी नशे में ऊँची नीची (अटपट) चाल से जाता है जैसे नींद में खूँद करता हुआ (पैर अस्त-व्यस्त रखता हुआ) कोई मनुष्य चलता है।

४

काम, क्रोध और तृष्णा से ग्रसित होकर तुमने (प्रभु की) एक गति न समझी। तुम्हें फूटी आंखों से कुछ भी नहीं सूझ पड़ता। (ज्ञात होता है) तुम बिना पानी के ही डूब कर मर गए। तुम टेढ़े टेढ़े क्यों चलते हो? तुम अस्थि, चर्म और विष्ठा से ढके हुए हो और दुर्गंधि ही के आवरण-मात्र हो। तुम किस भ्रम में भूल कर राम का जाप नहीं करते? तुमसे काल (मृत्यु) अधिक दूर नहीं है। तुम अनेक यत्नों से इस शरीर की रक्षा करते हो कि यह पूरी अवस्था (वृद्धावस्था) तक रहे। अपनी शक्ति से किया हुआ कुछ भी नहीं होता। (बेचारा) प्राणी कर ही क्या सकता है? यदि उस (ब्रह्म) की ही इच्छा हो तो एक नाम की व्याख्या करने वाले सतगुरु से भेंट हो सकती है। ऐ मूर्ख तुम बालू के घर में रहते हुए अपने शरीर को फुला रहे हो? कबीर कहता है, जिन्होंने राम को नहीं पहिचाना वे बहुत चतुर होते हुए भी अंत में (भव-सागर में) डूब ही गए।

५

(तुम) टेढ़ी पाग बाँध कर टेढ़े चले और (पान के) बीड़े खाने लगे! भक्ति-भाव से कुछ भी सरोकार न रख कर कहने लगे कि काम ही मेरा दीवान (मंत्री) है। तुमने अपने अभिमान में राम को भुला दिया! स्वर्ण और महासुन्दरी स्त्री को देख-देख कर तुम सुख मानने

लगं ? लालच, झूठ और विकारों के महामद में (तुम पड़े रहे) और इस प्रकार तुम्हारी अवधि (आयु) ही व्यतीत हो गई ! कबीर कहता है, अंत के समय में (समझ लो कि) यमराज सामने आकर खड़ा हो गया !

६

जीवन के चार दिनों में तुम अपनी नौबत (वैभव और मंगल-सूचक वाद्य) बजा कर चले। किंतु खाट, गठरी, घड़े आदि में से इतना भी (ज़रा-सा भी) तुम अपने साथ नहीं ले जा सके। देहरी पर बैठ कर स्त्री रोती है, दरवाज़े तक माँ (रोते हुए) साथ जाती है। श्मशान भूमि तक सब कुटुँब के लोग मिल कर जाते हैं। (बाद में) जीवात्मा अकेला ही जाता है। फिर लौट कर वे (जीवन काल के) पुत्र, संपत्ति पुर और नगर देखने को नहीं मिलते। कबीर कहता, है तुम राम का स्मरण क्यों नहीं करते ? यह तुम्हारा जीवन व्यर्थ जा रहा है !

रागु भैरउ

१

जब मैंने गुरु की सेवा से भक्ति अर्जित की तब कहीं जाकर मैंने यह मनुष्य का शरीर प्राप्त किया है। इस मनुष्य-शरीर की अभिलाषा देवता तक करते हैं। इसलिए इस मनुष्य-शरीर से हरि का भजन कर उनकी सेवा करो। गोविन्द का भजन करो, उन्हें कभी भूल मत जाओ। मनुष्य-शरीर का यही तो बड़ा लाभ है। जिस समय तक तेरे शरीर में वृद्धावस्था और रोग नहीं आया, जिस समय तक तेरे शरीर को मृत्यु ने आकर नहीं पकड़ा, जिस समय तक तेरी वाणी वृद्धावस्था की शिथिलता से व्याकुल नहीं हुई उस समय तक हे मन, तू सारंगपाणि (प्रभु) का भजन कर ले। हे भाई, यदि तू अभी (भगवान का) भजन नहीं करता, तो कब करेगा ? जब तेरा अंत समय आवेगा तब तुझसे भजन करते

न बन पड़ेगा। जो कुछ भी तू इस समय करेगा वही सार है, बाद में तू पछतावेगा और भव-सागर से पार नहीं जा सकेगा। वस्तुतः सेवक वही है जो परिसेवना करता है, उसी ने निरंजन देव को प्राप्त किया है। गुरु से मिल कर उसके (हृदय-मंदिर के) कपाट खुल गए हैं और वह फिर चौरासी लाख योनियों के मार्ग में आने वाला नहीं है। यही तेरा अवसर है, यही तेरी बारी है। तू अपने हृदय के भीतर विचार करके देख। कबीर कहता है, इस अवसर पर चाहे तू विजय प्राप्त कर ले या पराजित हो जा, मैंने अनेक प्रकार से पुकार-पुकार कर यही कहा है।

२

(शिव की पुरी) बनारस में बुद्धि का सार रूप (गुरु) निवास करता है। वहाँ तुम उससे मिलकर (धर्म) विचार करो। बुरे (ईत) और निकम्मे (ऊत) की साधारण बातों में पड़ कर मेरा जुलाहे का कार्य कर करके अपना जीवन कौन नष्ट करे? मेरा ध्यान तो अपने वास्तविक पद के ऊपर ही लगा हुआ है और विश्व के स्वामी राम का नाम ही मेरा ब्रह्म-ज्ञान है। मूलाधार चक्र के द्वार को मैंने बंधन में बाँध लिया है और उसके अंतर्गत सूर्य के ऊपर मैंने सहस्रदल कमल के चंद्र को स्थिर कर रक्खा है। पश्चिम के द्वार (इडा नाड़ी की मुख पर) मूलाधार चक्र का सूर्य तप रहा है, किंतु मुझे उसकी चिंता नहीं है क्योंकि उसके ऊपर मेरु-दंड की स्थिति है। पश्चिम द्वार (इडा नाड़ी) के सिरे पर एक ओट (आज्ञा चक्र) है। उस ओट (आज्ञा चक्र) के ऊपर एक दूसरी खिड़की (ब्रह्म-रंध्र) है। उस खिड़की के ऊपर दशम द्वार है। कबीर कहता है, न तो अंत उसका ही है और न उसका पार ही पाया जा सकता है।

३

वही (सच्चा) मुल्ला (बहुत बड़ा विद्वान्) है जो मन से लड़ता है और गुरु के उपदेश से काल से द्वन्द्व युद्ध करता है। वह काल-पुरुष

(यमराज) का मान-मर्दन करता है। उस मुल्ला का (मैं) सदैव अभिनंदन करता हूँ। अंतर्यामी ब्रह्म तो सदैव समीप है उसे (तुम) दूर क्यों बतलाते हो ? यदि तुम (इस संसार के) संघर्ष (दुंदर) को वश में कर लोगे तो सदैव ही मंगल होगा। वह सच्चा क़ाज़ी (न्याय की व्यवस्था करने वाला) है जो अपनी काया पर विचार करता है और काया में अग्नि प्रज्वलित कर ब्रह्म को उद्भावित करता है। वह स्वप्न में भी बिंदु का स्राव नहीं होने देता। ऐसे ही क़ाज़ी को न तो वृद्धावस्था आती है, न मृत्यु। वही सच्चा सुल्तान (बादशाह) है जो दो शरों का संधान करता है। (एक से वह समस्त विकारों को अपने शरीर से) बाहर निकाल देता है, (दूसरे से वह समस्त अनुभूतियों को) भीतर ले आता है। वह 'आकाश-मंडल (ब्रह्म-रंध्र) में अपना समस्त लश्कर (फ़ौज) अर्थात् विचार-समूह केंद्रीभूत करता है। ऐसा ही सुल्तान अपने सिर पर छत्र धारण करता है। जोगी 'गोरख' 'गोरख' की पुकार करता है, हिंदू राम-नाम का उच्चारण करता है, मुसलमान एक 'ख़ुदा' की ही बाँग देता है किंतु कबीर का स्वामी तो (कबीर में ही) लीन होकर रहता है।

४

जो पत्थर को अपना देवता कहते हैं, उनकी सेवा व्यर्थ ही होती है। जो पत्थर के पैर पड़ते हैं उनके समीप अज़ाब (अजाई-संकट या विपत्ति) ही जाती है। हमारा स्वामी तो सदा ही बोलने वाला है, (पत्थर की तरह मौन नहीं है।) वह प्रभु सब जीवों को (जीवन) दान देने वाला है। ए अंधे, तू अपनी अंतरात्मा में बसे हुए प्रभु को नहीं पहिचानता, तू भ्रम में मोहित होने के कारण बंधन में पड़ता है। न तो पत्थर कुछ बोलता है, न देता ही है अतः समस्त (सेवा) कार्य व्यर्थ है और सेवा निष्फल है। जो (मृतक) मूर्ति को चंदन चढ़ाता है, उससे कहो किस फल की प्राप्ति होती है ? जो उसे विष्ठा में घसीटता है, उससे

उस मृतक (मूर्ति) का क्या घट जाता है ? कबीर कहता है, मैं पुकार कर कहता हूँ कि ऐ गँवार शाक्त, तू (अपने हृदय में) समझ देख ! द्विविधा भाव ने बहुत से कुलों को नष्ट कर दिया है, केवल राम-भक्त ही सदैव सुखी हैं।

५

पानी में मछली को माया ने आबद्ध कर लिया है। दीपक की ओर उड़ने वाला पतंग भी माया से छेदा गया है। हाथी को भी काम की माया व्यापती है। सर्प और भृंग की माया में नष्ट हो रहे हैं। हे भाई, माया इस प्रकार मोहित करने वाली है कि (संसार में) जितने ही जीव हैं, वे सभी (उसके द्वारा) ठगे गए हैं। पक्षी और मृग माया ही में अनुरक्त हैं। शक्कर मक्खी को (लोभ और तृष्णा के द्वारा) अधिक संतप्त करती है। घोड़े और ऊँट माया में भिड़े हुए हैं। चौरासी सिद्ध भी माया में ही क्रीड़ा कर रहे हैं। छः यती माया के सेवक हैं। नव नाथ, सूर्य और चंद्र, तपस्वी, ऋषीश्वर आदि सभी माया में शयन करते हैं। (वे यह नहीं जानते कि) माया में ही मृत्यु और पंच (इंद्रियों के रूप में उसके पंच) दूत हैं। कुत्ते और सियार माया में ही रँगे हुए हैं, साथ ही बंदर, चीते और सिंह भी (उसी रंग में हैं।) बिल्ली, भेड़, लोमड़ी और वृक्ष-मूल (जड़ें) भी माया में पड़ी हुई हैं। देवगण भी माया के भीतर भीगे हुए हैं, सागर, इंद्र (बादल) और पृथ्वी भी माया ही में हैं।) कबीर कहता है, जिसके पास उदर है (अर्थात् जिसे क्षुधा लगती है और जिसे भोज्य पदार्थों की आवश्यकता ज्ञात होती है) उसी को माया संतप्त करती है। वह (माया) तभी छूट सकती है जब (सच्चे) साधु (की संगति) प्राप्त हो।

६

(हे मन), जब तक तू, 'मेरी' 'मेरी' करता है, तब तक एक भी कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। जब तेरा यह 'अहं भाव' नष्ट हो जायगा तब

प्रभु आकर तेरा कार्य संपूर्ण करेंगे। तू ऐसे ज्ञान का विचार कर। दुःख को नष्ट करने वाले हरि का स्मरण तू क्यों नहीं करता ? जब तक सिंह (यह बलशाली मन) इस वन (शरीर) में रहता है तब तक वह वन (शरीर) प्रफुल्लित ही नहीं होता। (अर्थात् उसकी आध्यात्मिक शक्तियों का विकास नहीं होता।) जब सियार (गुरु का शब्द) उस सिंह (मन) को खा लेता है तो समस्त वन-राजि (शरीर के चक्र और कमल) प्रफुल्लित हो उठते हैं। जो (इस संसार में) जयी (समझा जाता) है वह (वास्तव में इस भव-भागर में) डूब जाता है और जो (इस संसार के सुखों से) हारा (हुआ समझा जाता है) उसका (इस भवसागर से) उद्धार हो जाता है। वह गुरु के प्रसाद से पार हो जाता है। दास कबीर यह समझा कर कहता हैं, केवल राम से ही लौ लगा कर (इस संसार में) रहो।

७

सत्तर सौ जिसके सालार (सेनापति) हैं, सवा लाख पैग़ंबर (संदेश-वाहक) हैं, अट्ठासी करोड़ जिसके शेख़ (पैग़ंबर के वंशज) हैं और छप्पन करोड़ जिसके अपने निजी कार्यकर्ता हैं, उसके समीप मुझ ग़रीब की प्रार्थना कौन पहुँचा देगा! उसकी मजलिस (सभा) में पहुँचना तो दूर उसके महल के समीप ही कौन जा सकता है ? (छप्पन करोड़ कार्य-कर्ताओं के अतिरिक्त) उसके तेतीस करोड़ सेवक और भी हैं। साथ ही उसके (गुणों पर ही रीझे हुए) चौरासी लाख मतवाले और भी घूमते फिरते हैं। (उस रहमान ने) बाबा आदम को कुछ निर्भयता दिखलाई तो (उसी के बल पर उन्होंने भी) बहुत दिनों तक स्वर्ग-भोग प्राप्त किया है। जिसके दिल में ख़लल हो जाता है (अर्थात् जिसका हृदय ईश्वर को छोड़ कर सांसारिक बातों में लग जाता है—पागल हो जाता है) और जिसका रंग पीला पड़ कर, वाणी लज्जित हो जाती है, वह क़ुरान छोड़कर शैतान के वश में होकर कार्य करने लगता है। हे लोई,

यह संसार दोष और रोष से भरा हुआ है और इसलिए वह अपने किए का फल पाता है। (हे रहमान), तुम दाता हो, हम सदैव भिखारी हैं। यदि मैं तुम्हें उत्तर देता हूँ तो वजगारी—जिस पर वज्र गिर पड़ा हो—(एक गाली) होती है। इसलिए दास कबीर तो तेरी शरण में ही लीन हो रहा है। हे रहमान (कृपा करने वाले), मुझे स्वर्ग के (अर्थात् अपने) समीप रख।

८

सभी कोई वहाँ (वैकुंठ में) चलने की बात कहते हैं लेकिन मैं नहीं जानता कि वैकुंठ कहाँ है। ये (बातें करने वाले स्वयं) अपना तो रहस्य जानते नहीं और बातों ही में वैकुंठ का बखान करते हैं। (मैं कहता हूँ कि) जब तक मन में वैकुंठ की आशा है तब तक (प्रभु के) चरणों में निवास नहीं हो सकता। न मैं वैकुंठ की खाई, दुर्ग और प्राचीर का पत्थर जानता हूँ, न उसका द्वार। कबीर कहता है, अब क्या कहा जाय ! (सच बात तो यह है कि) साधु-संगति में ही वैकुंठ है। (वह अन्यत्र नहीं है।)

९

हे भाई, यह कठिन दुर्ग (शरीर) किस प्रकार विजित किया जा सकता है ? इसमें दुहरे प्राचीर और तिहरी खाइयाँ हैं। (इस प्रकार इसके पाँच आवरण हैं—ये पाँच आवरण पाँच कोषों का संकेत करते हैं। वे पाँच कोष हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय। इनमें अन्नमय और प्राणमय तो प्राचीर है और मनोमय, ज्ञानमय और विज्ञानमय खाइयाँ हैं।) (इनके रक्षक) पाँच (तत्व) और पच्चीस (प्रकृतियाँ) हैं। इनके साथ मोह, मद, मत्सर और सामने अड़ी हुई प्रबल माया है। यदि (इनके समक्ष) मुझ दीन सेवक की शक्ति नहीं चलती तो हे रघुराई, मैं क्या करूँ ? (मेरा क्या दोष ?) इस (कठिन दुर्ग में) काम के किवाड़ लगे हुए हैं, सुख और दुःख दरवानी

कर रहे हैं और पाप और पुण्य दो दरवाजे हैं। महा द्वंद्व करनेवाला क्रोध वहाँ का प्रधान (सेनापति) है और मन ही दुर्गपति है। (उस दुर्गपति के आयुध इस प्रकार हैं—) स्वाद ही उसका कवच है, ममता ही उसका शिरस्त्राण है, कुबुद्धि ही उसकी कमान है जिसका वह आकर्षण किए हुए है। घट के भीतर जो तृष्णा है वही उसके तीर हैं। (इन शस्त्रों के सामने) इस गढ़ पर अधिकार नहीं किया जा सकता। किंतु कबीर ने इस गढ़ पर विजय प्राप्त करने की युक्ति जान ली है।) (उसने) प्रेम ही को पलीता (वह बत्ती जिससे तोप के रंजक में आग लगाई जाती है) बना कर आत्मा की हवाई (तोप) से ज्ञान का गोला चलाया और ब्रह्म-ज्ञान की अग्नि को 'सहज' से जला कर एक ही आक्रमण में (उस दुर्ग को) आँच से गला दिया। सत्य और संतोष (का शस्त्र) लेकर मैं लड़ने लगा और मैंने (पाप और पुण्य के) दोनों दरवाज़े तोड़ दिए। साधु-संगति और गुरु की कृपा से मैंने गढ़ के राजा (मन) को पकड़ लिया। ईश्वर के डर और स्मरण की शक्ति से मृत्यु के भय की फाँसी कट गई। दास कबीर (शरीर रूपी) गढ़ के ऊपर चढ़ गया और उसने (अनंत जीवन का) अविनाशी राज्य प्राप्त कर लिया।

१०

पवित्र गंगा गहरी और गंभीर हैं। (उन्हीं के किनारे) कबीर ज़ंजीर में बाँध कर खड़े किए गए। जब हमारा मन चलायमान नहीं है तो शरीर किस प्रकार डर सकता है? (फिर) चित्त तो (प्रभु के) चरण-कमलों में लीन हो रहा है। गंगा की लहर से हमारी ज़ंजीर टूट गई और (हम) कबीर, मृगछाला पर बैठे हुए दीख पड़े। कबीर कहते हैं, हमारे संगी-साथी कोई नहीं हैं। एकमात्र रघुनाथ (प्रभु) ही जल और थल में रक्षा करने वाले हैं। (यह पद भी सिकंदर लोदी के अत्याचार का संकेत करता है।)

११

(प्रभु ने अपने) निवास के लिए अगम और दुर्गम गढ़ (सहस्रदल कमल) की रचना की है जिसमें (ब्रह्म) ज्योति का ही प्रकाश होता है। वहाँ (कुँडलनी रूपी विद्युल्लता ही चमकती है और (नित्य) आनंद होता रहता है। वहीं पर प्रभु बालगोविंद शयन करते हैं। यदि इस जीवात्मा की लौ राम-नाम से लग जाय तो वृद्धावस्था और मरण से मुक्ति हो जाय और भ्रम दूर हट जाय। मन की प्रीति तो (प्रकृति जनित) रंग और अ-रंग ही में है। (यह वस्तु रंग-सहित है और यह रंग-रहित है इसी में मन की प्रवृत्ति चलायमान होती है।) तथा वह मन 'मैं हूँ' 'मैं हूँ' की रटन का ही गीत गाता रहता है। किंतु जहां (सहस्रदल कमल में) प्रभु श्री गोपाल शयन करते हैं, वहाँ सदैव अना-(हत शब्द की झनकार होती रहती है। वहाँ तो खंड धारण करने वाले अनेक मंडल मंडित (शोभित) हैं। (प्रत्येक में) तीन तीन स्थान हैं और उन तीनों में प्रत्येक के तीन तीन खंड हैं। उनके भीतर (अभअंत-अभ्यंतर) अगम अगोचर ब्रह्म निवास करता है जिसके किसी रहस्य का पार शेषनाग भी नहीं पा सकते। द्वादश दल (हृदय के समीप स्थित अनाहत चक्र जिसके दल कदली पुष्प की भांति होते हैं) के भीतर कदली पुष्पवत् कमल के पराग में धूप के प्रकाश की भांति श्री कमला-कंत ने अपना निवास लेकर शयन किया है। जिस शून्य-मंडल के नीचे और ऊपर के मुख से आकाश लगा हुआ है, उसी में वह (ब्रह्म) प्रकाश कर रहा है। वहां न सूर्य है, न चंद्रमा किंतु (अपने ही प्रकाश में) वह आदि निरंजन वहां आनंद (की सृष्टि) कर रहा है। उसी शून्य-मंडल को ब्रह्मांड और उसी को पिंड समझो। तुम उसी मानसरोवर में स्नान करो और 'सोऽहं' का जाप करो जिस जाप में पाप और पुण्य लिप्त नहीं हैं (अर्थात् 'सोऽहं' जाप पाप और पुण्य से परे है।) उस शून्य-मंडल में न वर्ण (रंग) है न अ-वर्ण (अ-रंग) न वहाँ धूप है, न

छाया। वह गुरु के स्नेह के अतिरिक्त और किसी भाँति भी प्राप्त नहीं किया जा सकता। फिर (मन की 'सहज' शक्ति) न टालने से टल सकती है और न 'किसी अन्य वस्तु में' आ-जा सकती है। वह केवल शून्य में लीन होकर रहती है। जो कोई इस 'शून्य' को अपने मन के भीतर जानता है, वह जो कुछ भी उच्चारण करता है वह आप ही (सच्चे अंतःकरण) का रूप हो जाता है। इस ज्योति के रहस्य में जो व्यक्ति अपना मन स्थिर करता है, कबीर कहता है, वह प्राणी (इस संसार से) तर जाता है।

१२

[जिस राम (ब्रह्म) के समीप] करोड़ों सूर्य प्रकाश करते हैं, करोड़ों महादेव अपने कैलाश पर्वत के सहित हैं, करोड़ों दुर्गाएँ सेवा करती हैं, करोड़ों ब्रह्मा वेद का उच्चारण करते हैं, उसी राम से मैं याचना करूँगा, यदि मुझे कभी याचना करनी पड़ी। किसी अन्य देवता से मेरा कोई काम नहीं है। करोड़ों चंद्रमा वहाँ दीपक की भाँति प्रकाश करते हैं, तेतीसों (करोड़) देवता भोजन करते हैं। नवग्रह के करोड़ों समूह जिसकी सभा में खड़े हुए हैं; करोड़ों धर्मराज जिसके प्रतिहारी हैं; करोड़ो पवन जिसके चौबारों (चारो ओर के द्वारों से संयुक्त कमरों) में प्रवाहित होते हैं; करोड़ों वासुकि सर्प जिसकी सेज का विस्तार करते हैं; करोड़ों समुद्र जिसके यहाँ पानी भरते हैं और अट्ठारह करोड़ पर्वत ही जिसकी रोमावली हैं। करोड़ों कुबेर जिसका भंडार भरते हैं; जिसके लिए करोड़ों लक्ष्मी श्रृंगार करती हैं, करोड़ों पाप पुण्य का हरण करने वाले करोड़ों इंद्र जिसकी सेवा करते हैं; जिसके प्रतिहारियों की संख्या छप्पन करोड़ है, नगरी-नगरी में जिसकी ख़िल्कत (सृष्टि) है; जिस गोपाल की सेवा में करोड़ों कलाएँ मुक्तकेशी होकर अव्यवस्थित रूप से कार्य में जुटी हुई हैं; जिसके दरबार में करोड़ों संसार (स्थित) हैं और करोड़ों गंधर्व जयजयकार करते हैं; करोड़ों विद्याएँ जिसके समस्त गुणों

का गान कर रही हैं फिर भी उस परब्रह्म का अंत नहीं पाती हैं, बावन करोड़ जिसकी रोमावली है, जिसके द्वारा रावण की सेना छली गई थी, जिसका गुणगान सहस्र करोड़ भाँति से पुराण कहते हैं और जिसने दुर्योधन का मान मर्दन किया; करोड़ों कामदेव जिसके अणु-मात्र के बराबर भी नहीं है और (जिसके ध्यान-मात्र) से हृदय के भीतर भावनाएँ खो जाती हैं उस सारंगपाणि (प्रभु) से कबीर कहता है, (हे प्रभु) मैं तुमसे यह दान माँगता हूँ कि मुझे अभय-पद दीजिए।

रागु विभास प्रभाती

१

मेरे मारण और जीवन की शंका नष्ट हो गई और 'सहज' शक्ति अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुई। ज्योति के प्रकट होने से अंधकार तिरोहित हो गया और विचार करते हुए मैंने राम रूपी रत्न प्राप्त कर लिया। जब आनंद उत्पन्न हुआ तो दुःख दूर चला गया और मैंने मन रूपी माणिक लव के तत्व में (लव के भीतर) छिपा दिया। जो कुछ भी (इस संसार में) हुआ, वह तेरे ही कहने से (तेरे ही आदेश से) हुआ, जो यह समझता है, वह 'सहज' में लीन हो जाता है। कबीर कहता है, संसार के समस्त झंझट किलबिख) क्षीण हो गए और मेरा मन जग-जीवन (राम) में लीन हो गया।

२

यदि अल्लाह (ईश्वर) एक मसजिद ही में निवास करता है तो शेष पृथ्वी (मुल्क) पर किसका अधिकार है? हिन्दू कहते हैं कि मूर्ति के नाम में ही उस ब्रह्म का निवास है। अतः इन दोनों में तत्व (वास्तविकता) नहीं देखी गई। हे अल्लाह, हे राम, मैं केवल तेरे लिए ही संसार में जीवित हूँ। हे स्वामी, तू मुझ पर कृपा कर। कहा जाता है कि दक्षिण में हरि का निवास है और पश्चिम में अल्लाह का स्थान है

किंतु तू अपने हृदय में खोज, प्रत्येक हृदय में खोज। तुझे इसी स्थान पर उसका निवास मिलेगा। ब्राह्मण चौबीस एकादसी रक्खा है और क़ाज़ी रमज़ान का महीना (व्रत में व्यतीत करते हैं।) किंतु इस प्रभु कृपानिधान ने ग्यारस और रमज़ान मास दोनों को एक में मिला कर अपने समीप कर रक्खा है। उड़ीसा (जगन्नाथपुरी) में स्नान करने से क्या लाभ हुआ, मसजिद में सिजदा करने से क्या लाभ हुआ? जब तू अपने हृदय में कपट रखता हुआ नमाज़ गुज़ारता (पढ़ता) है तो काबे में हज के लिए जाने से क्या लाभ हुआ? हे प्रभु, तुमने इतने स्त्री पुरुषों की सृष्टि की है, ये सब तुम्हारे ही रूप हैं। निकम्मा कबीर भी राम और अल्लाह का है और सभी गुरु और पीर हमारे (लिए मान्य) हैं। कबीर कहता है, हे विविध (धर्मों के) मनुष्य, तुम केवल एक ईश्वर की शरण में पड़ो। रे प्राणी, तुम केवल नाम ही का जाप करो। तभी (इस भव-सागर से) तुम्हारा तरना निश्चय समझा जायगा।

३

प्रथम अल्लाह ने प्रकाश की सृष्टि की। बाद में प्रकृत से (उत्पन्न ही) ये सब मनुष्य हुए। जब एक ही प्रकाश से समस्त संसार की उत्पत्ति की गई तब कौन अच्छा और कौन बुरा है? ऐ भाई, तुम लोग भ्रम में मत भूलो। सृष्टिकर्ता में सृष्टि है और सृष्टि में सृष्टिकर्ता है जो सब स्थानों में व्याप्त हो रहा है। मिट्टी तो एक ही है, उसे सँवारने वाले (कुम्हार) ने अनेक भाँति से सँवारा है न तो मिट्टी के पात्र में कोई बुराई (ख़राबी) है न कुम्हार में। सभी (प्राणियों) में एक वही (ब्रह्म) सच्चा है, उसी का किया हुआ सब कुछ होता है। जो उसका आदेश पहिचान कर (संसार में) एक उसी को जानता है, उसी को सच्चा सेवक कहना चाहिए। अल्लाह तो अदृश्य (अलख) है, वह देखा नहीं जा सकता किंतु मेरे गुरु ने मुझे मीठा गुड़ (उपदेश) दिया है जिससे

कबीर कहता है, मेरी समस्त शंकाएँ नष्ट हो गईं और मुझे सभी प्राणियों) में एक निरंजन (ब्रह्म) ही दृष्टिगत हुआ।

४

वेद और क़ुरान को झूठा मत कहो, झूठा वह है जो उस (वेद और क़ुरान) पर विचार नहीं करता। जब तुम सभी (प्राणियों) में एक ईश्वर का निवास बतलाते हो तो मुरग़ी क्यों मारते हो? उसमें भी तो ईश्वर का निवास है। (हे मुल्ला, तुम सचमुच ईश्वरीय न्याय का कथन करो किंतु) तुम्हारे मन का भ्रम तो जाता ही नहीं है! तुम (बेचारे) जीव को पकड़ कर ले आए उसकी देह नष्ट कर दी, इस प्रकार तुमने मिट्टी को ही बिस्मिल किया (उस पर शस्त्राघात किया) किंतु (उसके भीतर) जो ज्योतिस्वरूप है, वह तो अनाहत रूप से (बिना कटे हुए) स्थिर है फिर बतलाओ, तुमने किसे हलाल (वध) किया? वज़ू करके तुमने अपने को क्या पवित्र किया! और क्या मुख धोया और क्या मसजिद में सिर नवाया! जब तुम्हारे हृदय में कपट है तो तुमने क्या नमाज़ पढ़ी और क्या तुम हज के लिए काबे गए? तू (बिल्कुल) अपवित्र है क्योंकि तुझे परम पवित्र (अल्लाह) नहीं दीख पड़ता और न उसका रहस्य ही ज्ञात है। कबीर कहता है, बहिश्त (स्वर्ग) से रहित होकर तू तो दोज़ख़ (नर्क) से ही संतुष्ट है।

५

शून्य (की आराधना ही) तेरी संध्या है। हे देव, देवों के अधिपति तुझमें ही आदि (सृष्टि) लीन है। तेरा अंत सिद्धों ने अपनी समाधि में (भी) नहीं पाया, इस लिए वे तेरी शरण में लगे हुए हैं। हे भाई, तुम ऐसे पुरुष निरंजन की आरती लो और सतगुरु का पूजन करो। ब्रह्म भी खड़ा होकर वेद का विचार कर रहा है किंतु उसे अदृश्य (ब्रह्म) नहीं दीख पड़ता। (मैंने आरती द्वारा ब्रह्म-दर्शन की विधि जान ली है।) मैंने अपनी (आरती में) तेज़ (या घृत) तो (पंच) तत्वों का

किया और बत्ती नाम की बनाई। इस प्रकार (आत्म) ज्योति की लौ लगा कर मैंने इस दीपक को प्रज्वलित किया और जगदीश (ब्रह्म) की ओर प्रकाश फेंका। इसे (वास्तव में) समझने वाले ही समझ सकते हैं। सारंगपाणि (ब्रह्म-नाद) के साथ जो (मेरी आत्मा का) अनाहत नाद ध्वनित हो रहा है वही आरती के साथ कहे जाने वाले 'पंच-शब्द हैं। इस प्रकार हे निरंकार (आकर-रहित) और वाणी से न कहे जा सकने वाले निरवानी (ब्रह्म), कबीरदास ने तेरी आरती की है।

सलोकों के अर्थ

१—कबीर कहता है, (स्मरण करने की) माला तो (मेरे हाथ में है) और राम का नाम मेरी जिह्वा पर है। आदि युगों में जितने भक्त हो गए हैं उनके लिए (यही माला) सुख और विश्राम (प्रदान करने वाली) है।

२—कबीर कहता है, सभी लोग मेरी जाति का उपहास करने वाले हैं। मैं तो इस जाति की बलि जाता हूँ जिससे मैंने सृष्टि-कर्त्ता के नाम का जाप किया है।

३—कबीर कहता है, तू अस्थिरता के वश में क्या होता है और अपने मन में लालच क्या ला रहा है? तू सभी सुखों के नायक राम के नाम का रस पान कर।

४—कबीर कहता है, (कान में) स्वर्ण निर्मित कुंडल जिन पर लाल जड़े हुए हैं, अत्यंत सुंदर हैं किंतु वे कान विदग्ध (जले हुए) हैं जिनमें नाम रूपी मणि नहीं है।

५—कबीर कहता है, ऐसा कोई एक-आध ही (व्यक्ति) है जो जीते हुए भी (अपनी इंद्रियों को नष्ट कर संसार के प्रति) मृतक-रूप होता है तथा जो निर्भय होकर (प्रभु के) गुणों में रमण करता है और जहाँ देखता है वहाँ उसी (ब्रह्म) का रूप देखता है।

६—कबीर कहता है, जिस दिन मैं (संसार के प्रति) मृतक होता हूँ, (उस दिन के) बाद ही आनंद की सृष्टि होती है। मुझे अपना प्रभु मिल जाता है और मेरे अन्य साथी गोविंद का भजन ही करते रहते हैं (उन्हें उस ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती।)

७—कबीर कहता है, 'हम सभी से बुरे हैं, हमें छोड़ कर अन्य सभी अच्छे हैं'। जो ऐसा समझता है, वही हमारा मित्र हो सकता है।

८—कबीर कहता है, (माया) अनेक वेश बना कर मेरे

समीप आई किंतु जब गुरु ने मेरी रक्षा कर ली तो उसी (माया) ने मुझे प्रणाम किया।

९—कबीर कहता है, उसी को मारना चाहिए जिसके मारने से सुख (प्राप्ति) होती है। तभी सब लोग 'अच्छा' 'अच्छा' कहते हैं और कोई बुरा नहीं मानता।

१०—कबीर कहता है, अरुण (माया ब्रह्म से उत्पन्न होकर संसार में) काली (पापमयी) हो जाती है और उसी (पापमयी) काली (माया) से जीव जंतुओं की उत्पत्ति होती है। इन (जीव जंतुओं) को ईश्वर से दंडित हुआ जान कर (साधु-संत) शांति का फाहा लेकर उनकी ओर दौड़ पड़ते हैं।

११—कबीर कहता है, चंदन का वृक्ष (संत) अच्छा है जिसे ढाक और पलाश (नीचे मनुष्यों) ने घेर लिया है। चंदन के पास निवास करने से वे भी चंदन हो जायेंगे। (उनमें भी चंदन की सुगंधि बस जायगी।)

१२—कबीर कहता है, बाँस अपनी विशालता में ही डूब गया है। इस प्रकार की विशालता में (ईश्वर करे) कोई न डूबे। बाँस (बड़ा होते हुए भी इतना गया-बीता है कि) चंदन के समीप बसते हुए भी उसमें किसी प्रकार की सुगंधि नहीं आती।

१३—कबीर कहता है, मैंने संसार के लिए अपना धर्म खो दिया किंतु वह मेरे साथ (मरते समय भी) न चल सका। असावधानी में पड़ कर मैंने अपने हाथ से (अपने पैर पर) कुल्हाड़ी मार ली।

१४—कबीर कहता है, मैं हज के संबंध में कितने स्थानों में फिरता रहा हूँ। (अंत में मुझे यही अनुमान हुआ कि) राम-स्नेह से रहित व्यक्ति मेरे विचार से उजड़ा हुआ ही है। (उसमें कोई भी सरस भावना नहीं हो सकती।

१५—कबीर कहता है, संतों की झोपड़ी अच्छी है, और कुसती

के गाँव की भट्ठी अच्छी है। उस महल को आग लग जाय जिसमें हरि का नाम नहीं है।

१६—कबीर कहता है, संत के मरने पर रोने की क्या आवश्यकता ? वह तो अपने घर (आदि निवास को) जा रहा है। रोना तो बेचारे शाक्त के लिए चाहिए जो बाज़ार बाज़ार बिकता है। (अनेक योनियों में आता-जाता है।)

१७—कबीर कहता है, शाक्त ऐसा है जैसे लहसुन (मिला हुआ भोजन) खाना। यदि कोने में भी बैठ कर वह खाया जाय, (तो उसकी दुर्गंधि सब ओर फैल जाती है और) अंत में वह सब पर प्रकट हो ही जाता है।

१८—कबीर कहता है, माया तो एक मटकी है जिसमें पवन (प्राणायाम) मथानी के सदृश है। (उसके सहारे) संतों ने तो (तत्व रूपी) मक्खन (निकाल कर) खाया, शेष (मोह-ममता रूपी) जो तर्क रह गया, उसे संसार पीता है।

१९—कबीर कहता है, माया तो मटकी है जिसमें पवन (प्राणायाम) घृत की धारा है। जिसने मंथन किया (उसने प्राप्त किया यद्यपि मंथन करने वाला कोई दूसरा (ब्रह्म) ही है।

२०—कबीर कहता है, माया एक चोर की तरह है जो (लोगों को) चुरा-चुरा कर बाज़ार में बेचती है। एक कबीर ही को वह नहीं चुरा सकी जिसने उसे (माया को) बारह-बाट (नष्ट-भ्रष्ट) कर दिया।

२१—कबीर कहता है, इस युग में उन्हें सुख नहीं है जो अनेक मित्र बनाते हैं। नित्य सुख तो वही पाते हैं जो अपना चित्त केवल एक (ब्रह्म) से लगाते हैं।

२२—कबीर कहता है जिस मरने से संसार डरता है, उस (मरने) से मेरे हृदय में बड़ा आनंद होता है, क्योंकि मरने ही से पूर्ण परमानंद की प्राप्ति होती है।

२३—राम रूपी अमूल्य से रत्न प्राप्त कर ऐ कबीर, तू अपनी गाँठ मत खोल। न तो इस रत्न के उपयुक्त कोई नगर है, न पारखी है न ग्राहक है और न इसकी कोई क़ीमत है।

२४—कबीर कहता है, तू उस (संत) से प्रेम कर जिसका आराध्य राम है। पंडित, राजा और पृथ्वी के स्वामी ये किस काम आते हैं?

२५—कबीर कहता है, एक (प्रभु) से प्रेम करने से अन्य सभी बातों की द्विविधा चली जाती है। फिर तेरी इच्छा हो तो लंबे केश रख ले, नहीं तो बिल्कुल ही सिर मुँडा डाल।

२६—कबीर कहता है, यह संसार एक काजल की कोठरी है और उसमें रहने वाले भी अंधे हैं वे उसमें से निकल नहीं सकते।) मैं तो उनकी बलिहारी जाता हूँ जो उसमें प्रवेश कर बाहर निकल आते हैं।

२७—कबीर कहता है, यह शरीर नष्ट हो जायगा। यदि तुममें शक्ति हो तो इसे बचा लो जिनके पास लाखों और करोड़ों (का धन) था, वे भी (संसार से) नंगे पैर ही गए।

२८—कबीर कहता है, यह शरीर नष्ट हो जायगा। तू किसी मार्ग पर तो अपने को लगा। या तो तू साधुओं की संगति कर, या हरि का गुण-गान गा।

२९—कबीर कहता है; मरते मरते तो यह सारा संसार मर गया किंतु (वास्तविक) मरना कोई नहीं जान सका। मरना तो वही है कि एक बार मर कर पुनर्मरण न हो। (आवागमन से मुक्ति मिल जाय।)

३०—कबीर कहता है, यह मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, यह बार-बार नहीं होता। जिस प्रकार वन के वृक्षों से पके हुए फल पृथ्वी पर गिर कर फिर डाल से नहीं लगते।

३१—ऐ कबीर, तू ही कबीर (सर्वोपरि ब्रह्म) है और तेरा नाम ही कबीर (महान) है। किंतु राम रूपी रत्न तो तुझे तब प्राप्त होगा जब

पहले तू शरीर से मुक्त होगा।

३२—कबीर कहता है, तुम व्यर्थ ही ग्लानि से क्यों झींकते हो? तुम्हारा कहा हुआ (इच्छित कार्य) तो होगा नहीं। उस करीम (कृपालु) ने तुम्हारे लिए जो कर्म निर्धारित कर दिए हैं, उन्हें कोई मिटा नहीं सकता।

३३—कबीर कहता है, राम एक ऐसी कसौटी की तरह हैं जिस पर झूठा (मनुष्य) टिक ही नहीं सकता। (उसके दोष शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं।) राम रूपी कसौटी तो वही सहन कर सकता है (उस पर वहा खरा उतर सकता है) जो जीवन्मृत (जीते जी संसार के प्रति मृतकवत्) होता है।

३४—कबीर कहता है, (संसार के लोग) उज्ज्वल कपड़े पहिनते हैं और तांबूलादि खाते हैं किंतु एक उस हरि के नाम के बिना वे बँध कर यमपुरी चले जाते हैं।

३५—कबीर कहता है, यह (शरीर रूपी) बेड़ा अत्यंत जर्जर है, इसमें हज़ारों छिद्र हैं। जो हलके-हलके (पवित्रात्मा) थे वे तो (संसार-सागर से) तर गए किंतु जिनके सिर पर (अपराधों का) भार था, वे डूब गए।

३६—कबीर कहता है, (मरने पर) हड्डियाँ तो लकड़ी की तरह जलती हैं और केश घास की तरह। इस संसार को (इस तरह) जलता देखकर कबीर उदास हो गया।

३७—कबीर कहता है, चमड़े से अच्छादित हड्डियों पर गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि जो श्रेष्ठ घोड़ों पर छत्र से मंडित थे, वे बाद में पृथ्वी ही में गाड़े गए।

३८—कबीर कहता है, ऊँचा भवन देख कर गर्व नहीं करना चाहिए क्योंकि आज या कल पृथ्वी में लेटना ही पड़ेगा और ऊपर घास जम आयगी।

३९—कबीर कहता है, किसी प्रकार का) गर्व नहीं करना चाहिए और न किसी निर्धन पर हँसना ही चाहिए। तेरी नाव (जीवन) अभी भी संसार-) सागर में है। कौन जाने आगे क्या हो!

४०—कबीर कहता है, अपने सुंदर शरीर को देखकर गर्व नहीं करना चाहिए। तुम उसे आज या कल छोड़ कर वैसे ही चले जाओगे जैसे सर्प अपना केचुल छोड़ता है।

४१—कबीर कहता है, (इस जीवन में) राम नाम की लूट (सरलता से हो सकती है।) यदि तुझे लूटना है तो (शीघ्र ही) लूट ले। नहीं तो जब प्राण छूट जायँगे तो फिर पीछे पछताना ही होगा।

४२—कबीर कहता है, ऐसा कोई (मनुष्य) उत्पन्न नहीं हुआ जो अपने घर (शरीर) में आग लगा दे (अर्थात् वासनाओं का विनाश कर दे) और पाँचों लड़कों (इंद्रियों) को जलाकर (केवल) राम में अपनी लौ लगा कर रहे।

४३—कोई तो अपना लड़का बेचता है, कोई लड़की। यदि वह कबीर से साझा कर ले तो वह हरि के साथ व्यापार करने लगे। (अर्थात् ईश्वर की ओर प्रवृत्त हो जाय।)

४४—कबीर कहता है, दूसरों को ही उपदेश करते रहने से तुम्हारे मुँह में धूल पड़ेगी (तुम्हारे हाथ कुछ न आवेगा) क्योंकि दूसरों की (अन्न) राशि की रक्षा करते करते तुम स्वयं अपने घर का खेत खा डालोगे। (अर्थात् तुम्हें अपनी आत्मोन्नति का अवसर ही न मिलेगा।)

४५—कबीर कहता है, जब की भूसी खाते हुए भी तुम साधु की संगति में रहो। जो होनहार (भावी) है वह तो होवेगी ही किंतु कभी किसी शाक्त की संगति में मत जाओ।

४६—कबीर कहता है, साधु की संगति में दिनों-दिन प्रेम दूना होता जाता है। किंतु शाक्त तो काली कामरी की तरह है, जो धोने से

कभी सफ़ेद नहीं हो सकती (अर्थात् उसे कितना ही उपदेश क्यों न करो उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश न होगा।)

४७—कबीर कहता है, जब तुमने मन को ही नहीं मूँड़ा तो केश मुड़ाने से क्या होता है ? क्योंकि जो कुछ भी (पाप-कर्म) किया वह मन ने किया, बेचारे सिर को व्यर्थ ही मूड़ा गया !

४८—कबीर कहता है, राम को नहीं छोड़ना चाहिए चाहे शरीर और संपत्ति चली जावे। (राम के) चरण-कमलों में चित्त लगाकर राम-नाम में ही लीन हो जाना चाहिए।

४९—कबीर कहता है जिस यंत्र (शरीर) को हम बजाते थे उसके सभी तार (इंद्रिय समूह) टूट गए। बेचारा यंत्र (शरीर) क्या करे। जब उसका बजाने वाला ही (जीवात्मा इस संसार को छोड़कर) चलने लगा !

५०—कबीर कहता है, मैं उस गुरु की माँ का सिर मूँडना चाहता हूँ जिस गुरु के वचनों से भ्रम दूर नहीं होता है। वह (गुरु) स्वयं तो चारों वेदों में डूबा रहता है, अपने चेलों को भी (संसार-सागर में) बहा देता है।

५१—कबीर कहता है, तूने जितने पाप किए हैं, उन्हें तूने नीचे छिपा कर रख लिया है लेकिन अंत में जब धर्मराज ने पूछा तो सबके सब प्रकट हो गए।

५२—कबीर कहता है, तूने हरि का स्मरण छोड़कर कुटुंब का बहुत पालन-पोषण किया। किंतु तू यह धंधा करता ही रह गया, अंत में न तेरा कोई भाई रहा, न बंधु।

५३—कबीर कहता है, तू हरि का स्मरण छोड़ कर रात्रि में (मंत्रों को) जगाने के लिए (स्मशान-भूमि में) जाता है। (स्मरण रख) तू ऐसी सर्पणी होकर फिर संसार में आवेगा जो अपने बच्चों को स्वयं खा लेती है।

५४—कबीर कहता है, तू हरि का स्मरण छोड़ कर सदैव स्त्री को अपने सिर पर रखे रहता है। (स्मरण रख) तू संसार में ऐसी गधी होकर जन्म लेगा जो चार चार मन का बोझ सहन करती है।

५५—कबीर कहता है, यदि तुझमें बहुत अधिक चातुर्य है तो अपने हृदय में हरि का जाप कर। (समझ ले कि हरि का जाप करना) सूली के ऊपर खेलने की भाँति है। यदि वहाँ से तू गिरा तो फिर तेरे लिए कोई स्थान नहीं है।

५६—कबीर कहता है, वही मुख धन्य है जिस से 'राम' कहा जाता है। (उस राम-नाम से) बेचारे शरीर की क्या बात, ग्राम का ग्राम पवित्र हो जायगा।

५७—कबीर कहता है, वही कुल अच्छा है जिस कुल में हरि का दास उत्पन्न होता है। जिस कुल में हरि का दास नहीं होता, वह कुल तो ढाक और पलास की भाँति है।

५८—कबीर कहता है, घोड़े, हाथी और अत्यंत घने रूप में लाखों ध्वजा भले ही फहराएँ किंतु समस्त सुख से भिक्षा अच्छी है यदि उसमें राम का स्मरण करते हुए दिन व्यतीत होता है।

५९—कबीर कहता है, सारे संसार में ढोल कंधे पर चढ़ाकर घूमा। सब को ठोक बजा कर देखते हुए (मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि) कोई किसी का नहीं है।

६०—मार्ग में मोती बिखरे हुए हैं, वहीं पर एक अंधा आ निकला (किंतु उसके सामने उन मोतियों का क्या मूल्य है?) उसी भाँति ज्ञान ज्योति के बिना यह सारा संसार जगदीश (के महत्व) का उल्लंघन करता जा रहा है।

६१—कबीर का वंश डूब गया क्योंकि उसमें कमाल जैसा पुत्र उत्पन्न हुआ। वह हरि का स्मरण करना छोड़ कर घर में धन-संपत्ति ले आया!

६२—कबीर कहता है, साधू से मिलने के लिए जाते समय किसी को अपने साथ न लेना चाहिए। (एक बार माया मोह छोड़कर) फिर पीछे पैर नहीं रखना चाहिए। आगे जो कुछ होना हो, हो।

६३—कबीर कहता है, जिस रस्सी से सारा संसार बँधा हुआ है उससे ऐ कबीर, तू मत बँध! नहीं तो सोने के समान तेरा शरीर वैसे ही अदृश्य हो जायगा जैसे आटे में नमक।

६४—कबीर कहता है, जब आत्मा चली जाती है तो सीधे सेना की सेना को (अथवा इशारे मात्र से) पृथ्वी में गाड़ देते हैं। फिर भी यह जीव अपने नेत्रों का टुच्चापन नहीं छोड़ता।

६५—कबीर कहता है, (हे प्रभु) मैं नेत्रों से तुझे देखता रहूँ, कानों से तेरा नाम सुनता रहूँ, वाणी से तेरे नाम का उच्चारण करता रहूँ और तेरे चरण-कमलों को हृदय में स्थान देता रहूँ।

६६—कबीर कहता है, मैं गुरु के प्रसाद से स्वर्ग और नर्क (दोनों) से परे ही रहा। मैं आदि और अंत में भी (प्रभु या गुरु) के चरण-कमलों की मौज (लहर) में निरंतर रहा।

६७—कबीर कहता है, मैं चरण-कमलों की मौज (लहर में रहने के उल्लास) का कहो कैसे अनुमान करूँ। वाणी के द्वारा उसका सौंदर्य नहीं देखा जा सकता। वह तो देखने से ही संबंध रखता है।

६८—कबीर कहता है, मैं (अपने प्रभु को) देख कर क्या कहूँ! यदि कहूँ भी तो विश्वास कौन करेगा? अतः हरि जैसा है वह वैसा ही रहे और मैं हर्षित होकर उसके गुणों का गान करूँ। (न मेरे कहने की आवश्यकता है, न किसी के सुनने की।)

६९—कबीर कहता है, मनुष्य सुखोपभोग करते हुए उपदेश भी देता है, और खाते-पीते हुए भी चिंता करता रहता है जैसे कुंज पक्षी विचरण करते हुए भी मन को (अपने घोंसले और बच्चों आदि के) ममता-मोह में उलझा रखता है।

७०—कबीर कहता है, आकाश में बादल छाये हैं और बरस कर सरोवरों को पानी से भर देते हैं (अर्थात् ईश्वरीय विभूति प्रत्येक क्षण बरस कर संसार के कण-कण में दिव्य ज्योति भर रही है।) यदि फिर भी मनुष्य चातक की तरह जल के लिए तरसता रहे तो उसका क्या हाल होगा?

७१—कबीर कहता है, यदि चक्रवाकी रात्रि के समय बिछुड़ जाती है तो वह प्रातःकाल आकर चक्रवाक से मिल जाती है। किंतु जो व्यक्ति राम से बिछुड़ जाते हैं, वे न राम से प्रातःकाल में और न रात्रिकाल में मिल सकते हैं। (अर्थात् राम से एक बार बिछुड़ने से वे सदैव के लिए राम से विलग ही हो जाते हैं।)

७२—कबीर कहता है रात्रि (जीवन) में (ईश्वर से) वियोगी होकर ऐ संखम (चक्रवाक पक्षी—यहाँ मनुष्यों) तू कृश और दुखी ही रह। तू मंदिर मंदिर (देवी देवताओं की खोज में) भले ही रोता रहे किंतु सूर्य (ज्ञान) के उदय होने पर ही तू अपने देश (परम-पद) को प्राप्त होगा।

७३—कबीर कहता है, (ऐ मनुष्य) तू सोकर क्या करेगा? तू जाग। रोने से तो मुझे दुःख ही हुआ। (यह तो समझ कि) जिसका (अंतिम) स्थान क़ब्र (समाधि) में है, क्या वह (संसार में) सुख से सो सकेगा?

७४—कबीर कहता है, (ऐ मनुष्य) तू सोकर क्या करेगा? उठ कर मुरारी (ब्रह्म) का जाप क्यों नहीं करता? एक दिन तो तुझे लंबे पैर पसार कर सोना ही है।

७५—कबीर कहता है, (ऐ मनुष्य) तू सोकर क्या करेगा? तू उठ कर बैठ जा और जागरण कर। जिस (प्रभु) के साहचर्य से तू बिछुड़ गया है, फिर उसी के साथ लग।

७६—कबीर कहता है, जिस मार्ग पर संत चलता है उस मार्ग को

तू मत छोड़। तू तो उसी पर जा। उस मार्ग को देखते ही तू पवित्र हो जायगा और संत से भेंट होने पर तू नाम का जाप करने लगेगा।

७७—कबीर कहता है, शाक्त का साथ कभी न करना चाहिए, उससे दूर ही भाग जाना चाहिए। काले बर्तन को स्पर्श करने से कुछ न कुछ कालिमा का धब्बा तो लगेगा ही।

७८—कबीर कहता है, तू राम की ओर से जागरूक नहीं हुआ और तेरी वृद्धावस्था आ पहुँची। जब घर में आग लग गई तब दरवाज़े से क्या क्या निकाला जा सकता है?

७९—कबीर कहता है, वही कार्य हुआ जो करतार ने किया। उसके बिना कोई दूसरा नहीं है। एक वही सृष्टिकर्त्ता है।

८०—कबीर कहता है, फल फलने लगे और आम पकने लगे (अर्थात् शुभ कर्मों के परिणाम स्पष्ट होने लगे।) यदि तुमने (भूख से व्याकुल होकर) बीच ही (संसार) में इनका उपभोग न कर लिया तो अपने स्वामी की सेवा में (इन फलों को) पहुँचा दो।

८१—कबीर कहता है, (लोग) भगवान को ख़रीद कर पूजते हैं और मन के हठ से तीर्थों में (स्नान करने के लिए) जाते हैं। वे लोग दूसरों को देख-देख कर (अनुकरण करते हुए) स्वाँग बनाते हैं और भूल कर भटकते फिरते हैं।

८२—कबीर कहता है, (लोगों ने) पत्थर को परमेश्वर बना लिया है और सारा संसार उसकी पूजा करता है। जो इस भुलावे में पड़ा रहता है वह (मृत्यु की) काली धार में डूब जाता है।

८३—कबीर कहता है, काग़ज़ की तो कोठरी (पुस्तक) बनाई और स्याही रूपी कर्म के उस पर कपाट लगा दिए। पत्थर (मूर्ति) के साथ सारी पृथ्वी डुबा दी। पंडितों ने अपना यही मार्ग बनाया है।

८४—कबीर कहता है, जो कुछ तू कल करने वाला है, उसे अभी कर ले और जो अभी करना है उसे इसी क्षण कर ले। पीछे जब काल

सिर पर आ जावेगा तब कुछ न हो सकेगा।

८५—कबीर कहता है, मैंने एक ऐसा जंतु (आडंबरी साधु) देखा है जो धोई हुई लाख के समान दीख पड़ता है। वह देखने में तो कई गुना चंचल ज्ञात होता है किंतु वस्तुतः वह है मतिहीन और अपवित्र।

८६—कबीर कहता है, यम भी मेरी बुद्धि का तिरस्कार नहीं कर सकता। क्योंकि मैंने उस परविरदिगार (प्रभु) का जाप किया है जिसने स्वयं यम की सृष्टि की है।

८७—कबीर कहता है, मैं तो कस्तूरी की भाँति (आध्यात्मिक सुगंधि से परिपूर्ण) हो गया और अन्य सभी सेवक भ्रमर की भाँति (केवल उपदेश का शब्द करने वाले) हो गए। कबीर ने जैसे जैसे अपनी भक्ति बढ़ाई वैसे वैसे उसमें राम का निवास होता ही गया।

८८—कबीर कहता है, परिवार की उलझनों में राम एक किनारे ही पड़े रह गए। इसी बीच में धर्मराज के दूत धूमधाम से आ पहुँचे।

८९—कबीर कहता है, शाक्त से तो सुअर अच्छा है जो गाँव की गंदगी को साफ़ तो करता रहता है। बेचारा शाक्त तो यों ही मर गया और किसी ने उसका नाम भी नहीं लिया।

९०—कबीर कहता है, तूने कौड़ी कौड़ी जोड़कर लाख और करोड़ (रुपये) जोड़ लिए। किंतु (इतना होने पर भी) संसार से चलते समय तुझे कुछ भी नहीं मिला। (यहाँ तक कि चिता पर) तेरी लँगोटी (की गाँठ भी) तोड़ दी गई!

९१—कबीर कहता है, यदि तूने (वैष्णव होकर चार मालाएँ फेर लीं तो क्या हुआ! बाहर से भले ही स्वर्ण की द्वादश दीप्तियाँ तुझे प्राप्त हो गईं किंतु भीतर तो तुझ में (वासनाओं का) नशा भरा ही हुआ है।

९२—कबीर कहता है, तू अपने मन का अभिमान छोड़ कर रास्ते

का रोड़ा (पत्थर) बन कर रह जा। कोई बिरला ही इस प्रकार सेवक होता है और उसी को भगवान की प्राप्ति होती है।

९३—कबीर कहता है, यदि तू रास्ते का रोड़ा ही बन गया तो क्या हुआ? (ठोकर लगने से) पथिक को वह कष्टकारक होता है। वस्तुतः (हे प्रभु) तेरा सच्चा दास तो ऐसा है जैसे पृथ्वी में धूल (जिससे किसी को ठोकर नहीं लग सकती।)

९४—कबीर कहता है, यदि तू धूल ही हो गया तो क्या हुआ। वह उड़-उड़ कर शरीर में लगती है (और उसे गंदा करती है।) हरि का सेवक तो संपूर्ण रूप से ऐसा होना चाहिए जैसा पानी (जो उड़ कर किसी को न लग सके।)

९५—कबीर कहता है, यदि तू पानी भी हो गया तो क्या हुआ? वह भी कभी गरम और ठंडा होता रहता है (अपना स्वभाव बदलता रहता है।) हरि का सेवक तो ऐसा होना चाहिए जैसा कि स्वयं हरि है (जो न कभी गरम होता है, न शीतल। सदैव एकरस रहता है।)

९६—ऊँचा भवन है, स्वर्ण है, सुन्दर युवती स्त्री है, और भवन के शिखरों पर ध्वजाएँ फहरा रही हैं। किंतु इन सब से अच्छी मधुकरी (भिक्षा) है (जिसके लिए) संतों के साथ प्रभु का गुण-गान होता है।

९७—कबीर कहता है, जिस प्रकार प्रभात कालीन तारे अस्त होते हैं, उसी भाँति तेरा शरीर भी समाप्त हो जायगा। केवल ये दो अक्षर ('रा' और 'म') नष्ट नहीं होंगे जिनका आधार कबीर ने ले रक्खा है।

९८—कबीर कहता है, यह काठ की कोठी (शरीर) है जिसमें दशों दिशाओं (दस इंद्रियों) से आग लग रही है। उस आग से पंडितगण (जिन्हें सांसारिक ज्ञान है वे तो) जल कर मर गए और मूर्ख लोग (जो पंडितों के ज्ञान से विजित नहीं हुए) जलने से बच रहे।

९९—कबीर कहता है, तू अपने हृदय का संशय दूर कर दे और

पुस्तक-ज्ञान को (जल में) बहा दे। बावन अक्षरों की परीक्षा कर [उनमें से दो अक्षर ('रा' और 'म' अथवा 'ह' और 'रि') चुन कर] हरि के चरणों में अपना चित्त लगा दे।

१००—कबीर कहता है, यदि करोड़ों असंत भी मिल जायँ तो संत अपने 'संत-गुण' नहीं छोड़ता। जिस प्रकार सर्पों के द्वारा घिरे रहने पर भी चंदन अपनी शीतलता नहीं छोड़ता।

१०१—कबीर कहता है, जब मैंने ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त किया तो मेरा मन शीतल हो गया। जो ज्वाला संसार को जलाती है, वही (हरि के) सेवकों के लिए (शीतल) जल के समान है।

१०२—कबीर कहता है, सृष्टिकर्त्ता का खेल कोई नहीं जान सकता। या तो उसे स्वयं स्वामी (ब्रह्म) समझता है, या उसका दास जो उसकी सेवा में उपस्थित रहता है।

१०३—कबीर कहता है, अच्छा हुआ जो मुझे संसार से भय उत्पन्न हो गया और मुझे सांसारिक दिशाएँ भूल गईं। मैं ओले की तरह गल कर पानी हो गया और ढुलक कर (ब्रह्म-ज्ञान के) किनारे से जा मिला।

१०४—कबीर कहता है, (ब्रह्म ने) थोड़ी सी धूल एकत्रित कर शरीर की पुड़िया बाँध दी है। यह शरीर तो केवल चार दिनों का तमाशा ही है फिर अंत में वही धूल की धूल है।

१०५—कबीर कहता है, सूर्य और चंद्र की सृष्टि के साथ संसार के सभी शरीरों की उत्पत्ति हुई। किंतु बिना गुरु और गोविंद के दर्शन के सब शरीर फिर पलट कर धूल ही हो गए।

१०६—'जहाँ निर्भयता है, वहाँ भय नहीं है और जहां भय है वहाँ हरि (का निवास) नहीं है।' यह वाक्य कबीर ने विचार कर ही कहा है। ऐ संतो, इसे (कान से न सुन कर) मन से सुनो।

१०७—कबीर कहता है, जिन्होंने (ब्रह्म को) कुछ नहीं जाना,

उनकी (सांसारिक) सुख के कारण नींद दूर हो गई किंतु हमने जो उसके रहस्य को समझा, तो हमारे सिर पर तो पूरी बला ही सवार हो गई। अर्थात् मैं प्रभु के विरह में व्याकुल होकर तड़पने लगा हूँ और मेरी नींद भी (इस दुःख से) दूर हो गई है।

१०८—कबीर कहता है, (संसार की) मार खाकर (आर्त्त जनों ने ईश्वर को) बहुत पुकारा और पीड़ित हुए लोगों ने पीड़ा से (ईश्वर को) दूसरी भाँति ही पुकारा किंतु कबीर को तो मर्म-स्थल की चोट लगी है और वह उसी व्यथा से अपने स्थान पर ही स्थित है। (वह किसी को किसी भाँति भी पुकारने नहीं गया।)

१०९—कबीर कहता है, (सभी मनुष्य) नोकदार भाले की चोट खाकर साँसें भरने लगते हैं। किंतु जो शब्द की चोट सहन कर सकता है, ऐसे ही गुरु का मैं दास हूँ।

११०—कबीर कहता है, ऐ मुल्ला, तू (मस्जिद की) मुड़ेर पर क्या चढ़ता है! (और बाँग देता है!) स्वामी बहरा नहीं है। जिसे प्रसन्न करने के लिए तू बाँग देता है, उसे तू अपने हृदय के भीतर ही देख।

१११—ऐ शेख़, तू धैर्य रहित होकर हज के लिए क्या काबे जाता है? कबीर कहता है, जिसका हृदय विशुद्ध नहीं है, उसे ख़ुदा कहाँ मिल सकता है?

११२—कबीर कहता है, तू अल्लाह की बंदगी (वंदना) कर जिसके स्मरण करने से दुःख नष्ट हो जाते हैं। फिर तो हृदय ही में स्वामी प्रकट हो जाते हैं और जलती हुई आग बुझ कर नष्ट हो जाती है। (वासनाओं की प्रचंड आग बुझ जाती है।)

११३—कबीर कहता है, तू शक्ति से ज़ुल्म करता है और उसे 'हलाल' का नाम देता है। जब (धर्मराज का) कार्यालय तेरे कर्मों का लेखा माँगेगा तब तेरी क्या दशा होगी?

११४—कबीर कहता है, खिचड़ी (जैसा साधारण भोजन) ही ख़ूब खाना चाहिए उसी में नमक का अमृत है। स्वादिष्ट (अथवा ढूँढ़ी हुई) रोटी के लिए कौन गला कटावे ?

११५—कबीर कहता है, गुरु-प्राप्ति की अनुभूति तभी समझना चाहिए जब मोह और शरीर की जलन मिट जाय। जब हर्ष और शोक हृदय को नहीं जला सकेंगे तब ईश्वर स्वयं ही (तुझ में) प्रकट हो जावेंगे।

११६—कबीर कहता है, राम का नाम लेने में भी एक रहस्य है और उस रहस्य में एक यही विचार होना चाहिए कि क्या लोग उसी 'राम' का उच्चारण करते हैं जो यह समस्त कौतुक रचने वाला ब्रह्म है (या उस 'राम' का उच्चारण करते हैं जो दशरथ का पुत्र है ?)

११७—कबीर कहता है, तुम 'राम' 'राम' का उच्चारण तो करो किंतु इस उच्चारण करने में भी विवेक की आवश्यकता है। वह 'राम' एक है जो अनेक में व्याप्त होकर फिर अपने एक रूप में लीन हो गया।

११८—कबीर कहता है, जिस घर में साधुओं की सेवा नहीं होती वहाँ हरि की सेवा भी नहीं होती। वे घर श्मशान की भाँति हैं और उनमें भूत निवास करते हैं।

११९—कबीर कहता है, जिस समय सच्चे गुरु ने (शब्द का) बाण मारा, उस समय गूंगा (ईश्वरानुभूति में मौन व्यक्ति) तो बहरा (सांसारिक शब्दों की ओर ध्यान न देने वाला) हो गया और बहरा (ईश्वरीय संदेश न सुनने वाला) कान सहित (गुरु के उपदेश को सुनने वाला) हो गया। चलने वाला (संसार के तीर्थों का पर्यटन करने वाला) भी पंगुल (एक ही स्थान पर स्थिर) हो गया।

१२०—कबीर कहता है, सतगुरु रूपी शूरवीर ने (शब्द का) जो एक बाण मारा तो उसके लगते ही (शिष्य) पृथ्वी पर गिर पड़ा (स्थिर

हो गया) और उसके हृदय में (ईश्वर के स्मरण का) छिद्र हो गया।

१२१—कबीर कहता है, आकाश की निर्मल बूँद (आत्मा) भूमि पर पड़ने के कारण (माया के लिपटने से) विकार-युक्त हो गई। उसी प्रकार यह मानवता बिना सत्संग के भट्ठे की (जली हुई) धूल हो गई।

१२२—कबीर कहता है, आकाश की निर्मल बूँद (आत्मा) को इस भूमि ने अपने में मिला लिया। उसे अलग करने के लिए अनेक चतुर (आचार्य) परिश्रम से पच गये किंतु वह अलग न हो सकी।

१२३—कबीर कहता है, मैं हज करने के लिए कावे जा रहा था कि बीच ही में खुदा मिल गया। वह स्वामी मुझसे लड़ पड़ा और कहने लगा "तुझे गो-वध की आज्ञा किसने दी थी?"

१२४—कबीर कहता है, मैं हज के लिए कितने बार कावे हो आया किंतु हे स्वामी मैं नहीं जानता मुझ में क्या दोष है कि पीर (गुरु) मुझ से मुख नहीं बोलता!

१२५—कबीर कहता है, जो तू शक्ति-पूर्वक जीव को मारता है, उसे तू हलाल (धर्म संगत) कहता है किंतु जब दैव अपना दफ़्तर (हिसाब) निकालेगा तब तेरा क्या हाल होगा?

१२६—कबीर कहता है, तूने जो ज़बर्दस्ती की है वह तो जुल्म है। खुदा तुझसे इसका जवाब तलब करेगा और जब (ईश्वरीय) हिसाब में तेरा लेखा निकलेगा तब तू मुँह पर ही बार बार मार खायगा।

१२७—कबीर कहता है, यदि हृदय में शुद्धता है तो (जीवन का लेखा देना सुनकर मालूम होता है। और तब (ईश्वर) दरबार में उस सच्चे व्यक्ति का कोई पल्ला पकड़ने वाला नहीं है।

१२८—कबीर कहता है, पृथ्वी और आकश इन दोनों से बरी होकर तू बंधन-हीन हो जा। इन्हीं दोनों के संशय में षट्-दर्शन और चौरासी सिद्ध पड़े हुए हैं।

१२९—कबीर कहता है, मुझमें मेरा कुछ भी नहीं है, जो कुछ भी मुझमें है, वह तेरा ही है। अतः तुझे तेरी वस्तु सौंपते हुए मेरी क्या हानि होती है?

१३०—कबीर कहता है, तेरे ध्यान में, 'तू' 'तू' शब्द का उच्चारण करते हुए मैं 'तू' ही में परिवर्तित हो गया, अब मुझमें 'अहम्' नहीं रहा गया। इस प्रकार जब अपना और पराया मिट गया तब देखता हूँ वहाँ 'तू' ही 'तू' दृष्टिगत होता है।

१३१—कबीर कहता है, बिकार की ओर देखते हुए और झूठी आशा करते हुए, कोई भी मनोरथ पूरा नहीं हो सका और अंत में (मनुष्य) निराश होकर इस संसार से उठकर चला गया।

१३२—कबीर कहता हे जो हरि का स्मरण करता है, वही संसार में सुखी है। जिस स्थान पर सृष्टिकर्त्ता उसे रखता है, वह उसी स्थान पर रहता है, यहाँ वहाँ नहीं डोलता फिरता।

१३३—कबीर कहता है, यह शरीर ही कजली बन है, इसमें मन ही मदमत्त हाथी है। ज्ञान-रत्न ही अंकुश है और कोई बिरला संत ही इस (हाथी) का महावत है।

१३४—कबीर कहता है, राम-रूपी रत्न की गुदड़ी का मुख तू किसी पारखी के आगे ही खोल। यदि कभी कोई सच्चा ग्राहक (संत) मिल जायगा तो वह अच्छे दामों से (आध्यात्मिक उपदेश से) उसे मोल ले लेगा।

१३५—कबीर कहता है, तूने राम-रूपी रत्न को तो पहिचाना ही नहीं और अपने परिवार के अनेक लोगों का पोषण करता रहा। तू यही धंधा करते हुए मर गया और (परिवार के) बाहर शब्द भी (ज़रा भी तहलका) नहीं हुआ।

१५६—कबीर कहता है, (ऐ मनुष्य) तू तो गढ़े से उठाई हुई मिट्टी के बर्तन की तरह है जो क्षण क्षण में नष्ट होता जा रहा है। (तेरा)

मन फिर भी (संसार का) जंजाल नहीं छोड़ता और यम ने (तेरे दर-वाज़े आकर) अपना नगाड़ा बजा दिया (कि अब संसार छोड़ने का समय आ गया।)

१३७—कबीर कहता है, राम एक वृक्ष की तरह है और वैरागी उसमें लगे हुए फल की तरह हैं। जिन साधुओं ने (धार्मिक) वाद-विवाद छोड़ दिया है वे उस वृक्ष की छाया के समान हैं।

१३८—कबीर कहता है, तू (राम नाम रूपी) ऐसा बीज (अपने हृदय में) बो जो बारह महीने फले। उसमें (शांति की) शीतल छाया हो। (वैराग्य का) घना फल हो और उसमें (सत्प्रवृत्ति रूपी) पक्षी सदैव क्रीड़ा करते रहें।

१३९—कबीर कहता है, दान देने वाला तो एक सुँदर वृक्ष है, दया ही उस वृक्ष का फल है, और उपकार ही उस तरु पर चढ़ने वाली जीवंतिनी लता है (जिसमें प्रेम का मधुर रस भरा हुआ है।) उस वृक्ष के अच्छी तरह से फले हुए फलों (गुणों) को लेकर पक्षी गण (साधु संत जन) दूर-दूर व्यापार करने (नाम का प्रचार करने) के लिए जाते हैं!

१४०—कबीर कहता है, साधु-संग की प्राप्ति यदि तुम्हारे भाग्य में लिखी है तो तुम्हें मुक्ति जैसे पदार्थ की प्राप्ति होगी और (संसार-सागर पी) विषम घाट में कोई अड़चन न होगी।

१४१—कबीर कहता है, यदि एक घड़ी, आधी घड़ी या आधी से भी आधी घड़ी में भक्तों के साथ गोष्ठी की जायगी तो लाभ ही लाभ होगा।

१४२—कबीर कहता है, भंग, मछली और सुरा-पान का जो जो लोग उपभोग करते हैं, वे तीर्थ, व्रत तथा नियमादि का पालन करते हुए भी सभी रसातल को चले जायँगे।

१४३—यदि तुम्हारा प्रियतम (प्रभु) तुम्हारे हृदय में है तो अपने

नेत्र नीचे की ओर ही किए रहो। (किसी दूसरी वस्तु के देखने की आवश्यकता नहीं है।) अपने प्रियतम से ही सब प्रकार की रस क्रीड़ा करो और यह क्रीड़ा किसी अन्य को न देखने दो।

१४४—हे प्रियतम (प्रभु), आठ पहर चौसठ घड़ी, मेरा हृदय तुम्हारी ओर ही देखता रहता है। जब मैं सभी वस्तुओं में ऐ प्रियतम, तुम्हीं को देखता रहता हूँ तो फिर मैं अपने नेत्र नीचे क्यों करूँ?

१४५—हे सखी, सुनो। मेरा हृदय प्रियतम में निवास करता है अथवा प्रियतम ही मेरे हृदय में निवास करता है। मुझे तो हृदय और प्रियतम की अलग पहिचान ही नहीं होती कि मेरे शरीर में मेरा हृदय है या मेरा प्रियतम!

१४६—कबीर कहता है, वह मन ही जगत् का गुरु है किंतु भक्तों का गुरु नहीं। (हो कैसे सकता है?) वह तो चारों वेदों में उलझ-सुलझ कर ही सड़-गल गया है।

१४७—हरि तो खाँड की तरह है जो (संसार रूपी) रेत में बिखर गया है। (मदोन्मत्त मन रूपी) हाथी उसे चुन नहीं सकता। कबीर कहता है, गुरु ने मुझे अच्छी युक्ति बतला दी है कि मैं (सूक्ष्म और सहज शक्ति से) चींटी बन कर उस खाँड को खा लूँ।

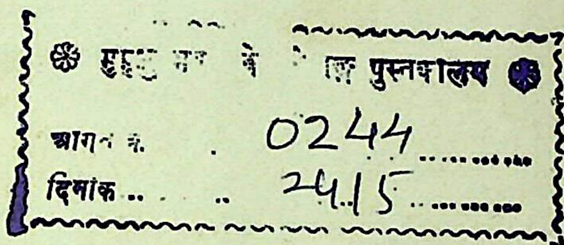
१४८—कबीर कहता है, यदि तेरे हृदय में प्रेम करने की साध है तो अपना सिर काट कर छिपा ले, (किसी के सामने अपने बलिदान का ढिंढोरा मत पीट) प्रसन्न होकर सहज भाव से खेलते-खेलते तू ईश्वरानुभूति का आवेश कर—फिर आगे जो कुछ होना होगा, वह तो होगा ही।

१४९—कबीर कहता है, यदि तेरे हृदय में प्रेम करने की साध है तो उस परिपक्व (ब्रह्म) के साथ क्रीड़ा कर। कच्ची सरसों को (कोल्हू में) पेर कर न खली होती है न तेल। अर्थात् संसार के देवी-देवताओं से प्रेम कर न मुक्ति मिलती है न सांसारिक ऐश्वर्य प्राप्त होता है।

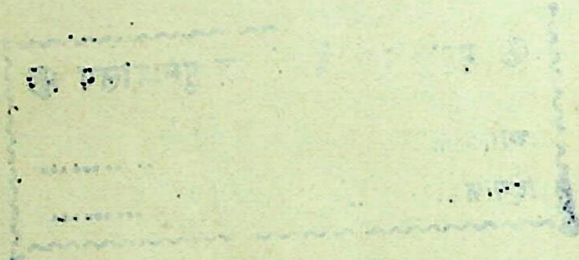
१५०—अंधे की तरह खोजता हुआ तू इधर उधर घूम-फिर रहा है और सच्चे संत को भी नहीं पहिचानता। हे नामदेव-कहो, भक्त बिना भगवान कैसे पाये जा सकते हैं?

१५१—हरि के समान (बहुमूल्य) हीरा छोड़ कर जो लोग अन्य (देवी-देवताओं) की आशा करते हैं वे लोग अवश्य दोज़ख में पड़ेंगे, यह रैदास सत्य कहता है।

१५२—कबीर कहता है, यदि तुम गृहस्थाश्रम में रहते हो तो धर्म का पालन करो नहीं तो वैराग्य धारण कर लो। जो वैराग्य लेकर (गृहस्थाश्रम के) बंधन में पड़ता है, वह बड़ा अभागा है।









साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग की एजेंसियाँ

१. आगरा पब्लिशिंग हाउस, बाग़ मुजफ्फर ख़ाँ, आगरा।
२. इंडियन प्रेस लिमिटेड, सारदानन्द पार्क, कानपुर।
३. पुस्तक स्थान, बरेली।
४. पुस्तक स्थान गोरखपुर।
५. इंडियन प्रेस लिमिटेड, जबलपुर।
६. इंडियन प्रेस लिमिटेड, गनपत रोड, लाहौर।
७. इंडियन बुक डिपो, आदित्य भवन, लखनऊ।
८. इंडियन प्रेस लिमिटेड, बाँकीपुर पटना।
९. राजपूताना बुक हाउस, अजमेर।
१०. साहित्य मन्दिर, पुरानी कोतवाली, झाँसी।
११. इंडियन प्रेस लिमिटेड, कोर्ट रोड राँची।
१२. दी सुरेश ट्रेडिंग कम्पनी, खँडवा सी० पी०।
१३. इंडियन पब्लिशिंग हाउस, नई सड़क, दिल्ली।

